प्रबल-परीक्षा

[एक रोमांचकारी ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक
धर्मकेसरी श्री कुंवर वीरेन्द्रसिंहजी रघुवंशी

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, दिल्ली।

प्रबल-परीक्षा

[एक रोमांचकारी ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक
धर्मकेसरी श्री कुँवर वीरेन्द्रसिंहजी रघुवंशी

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, दिल्ली

लेखक की अन्य रचनाएँ—

काव्य

१. जातीयता

२. राजर्षि भीष्म पितामह

नाटक

१. मर्यादा का मूल्य

२. संयम-सम्राट्

३. स्वातन्त्र्य-संग्राम

४. परमवीर चक्र

उपन्यास

१. देश-दीपक

२. कालिंजर-कीर्ति

३. साहस

प्रथम संस्करण
अक्तूबर, १९५५

मूल्य
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
बालकृष्ण, एम. ए.
युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, दिल्ली

श्रद्धाञ्जलि

हमारे देश के अनुपम रत्न, साहित्य-सेवी, विज्ञान-विशारद, गणित-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित स्वर्गीय डाक्टर अवधेश नारायणसिंह जी एम० एस-सी०, डी० एस-सी०, डीन आफ़ दी फ़ैकल्टी आफ़ साइन्स, लखनऊ विश्व-विद्यालय की पवित्र स्मृति में :—

श्रीमान्,

विज्ञान, गणित प्रवीण बन, विस्तार विद्या का किया।
शिक्षक, कुशल साहित्य-सेवी, हो सुव्रत-आसव पिया।।

परहेतु जीवन ध्येय माना, बढ़ कला के क्षेत्र में।
सेवक-समाज तथा सदा रख, राष्ट्र का हित नेत्र में।।

साहित्य-नौका आपकी शुभ ज्ञान-बल्ली से चली।
शिक्षित-जगत्-भव अतः यह अर्पित तुम्हें श्रद्धांजली।।

विनीत—

लेखक

दो शब्द

प्रस्तुत 'प्रबल-परीक्षा' नामक लघु उपन्यास पाठकों को भेंट करते हुये, इन 'दो शब्दों' के प्रकटीकरण में केवल-मात्र दो शब्द ही निवेदन करने का मेरा विचार है; जिनमें से एक है प्रस्तुत उपन्यास के शीर्षक एवं कथानक-निर्णय के सम्बन्ध में; और दूसरा है प्रस्तुत रचना-विषयक प्रेरणा-स्रोत के परिचय से सम्बंधित।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक को यदि कोई विद्वान् ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करने में किञ्चित संकोच भी करने लगें, तो भी इसे पूर्ण रूप से गल्प अथवा काल्पनिक कहने का तो साहस कर नहीं सकते, क्योंकि इस पर कितने ही लेखक अपनी-अपनी समर्थन-सम्बन्धी कुशल लेखनी उठा चुके हैं, जिसके कारण यह कथानक अब कल्पना के स्तर से बहुत ऊपर उठ गया है। अतः हम यदि इसे ऐतिहासिक सत्य मानते हैं तो कुछ अनुचित नहीं करते। इसके अन्तर्गत एक युवक नरेश अपने वीरत्व और वचन के प्रमाण में, एक वीराँगना अपने पवित्र पातिव्रत और सतीत्व के प्रमाण में, और एक सच्चा कर्त्तव्यतत्पर नमक हलाल सेवक अपनी स्वामि-भक्ति के प्रमाण में, अपने-अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर संसार की स्वधर्म सम्बन्धी अत्यन्त कठोर एवं महत्त्वशील *प्रबल परीक्षा* में किस प्रकार पूर्णरूप से सफल तथा उत्तीर्ण सिद्ध होते हैं, यह प्रस्तुत उपन्यास के अध्ययन का विषय है, जिसका विचार करते हुए हमारी दृष्टि में प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक तथा नाम 'प्रबल-परीक्षा' ही अत्यन्त उपयुक्त लगता है।

प्रस्तुत कथानक को लेखनीबद्ध करने में जिन-जिन महानुभावों से प्रेरणा प्राप्त हुई है उनमें स्वर्गीय श्री डाक्टर अवधेश नारायणसिंह जी एम० एस-सी०, डी० एस-सी, डीन आफ़ दी फ़ैकल्टी आफ़ साइन्स, लखनऊ

विश्वविद्यालय, श्री ठाकुर सत्यनारायणसिंह जी संसदीय-सचिव (Minister for Parliamentary Affairs), श्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी, चीफ मिनिस्टर उत्तर-प्रदेश, श्री ठाकुर त्रिभुवन नारायणसिंह जी संसद-सदस्य (Member Parliament), श्री कुंवर रघुवीरसिंह जी एम० ए० प्रोप्राइटर आरमी मस्कैंट्री स्टोर्स, श्री बालकृष्ण जी एम० ए० मैनेजिंग डायरेक्टर, युगान्तर प्रकाशन लि०, श्री पंडित रूपकिशोर जी इञ्जीनीयर बरमा-शैल, श्री पण्डित दयानन्द जी मन्त्री अ० भा० जाँ० ब्रा० महासभा और कुँवर घनश्यामसिंह जी भवानीपुर तरकौला (बिजनौर) हैं, जिनका मैं विशेष रूप से आभारी हूँ और जिनको हर्ष के साथ कोटिशः धन्यवाद देता हूँ तथा हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

उक्त सज्जनों में से भी, विशेष कृतज्ञता, श्रद्धा एवं भक्ति के अधिकारी हैं, स्वर्गीय श्री डाक्टर अवधेश नारायणसिंह जी जिन्होंने इस कार्य में अन्य सब से अधिक अभिरुचि प्रकट की थी, और जो दुर्भाग्यवश आज इस मर्त्य-लोक में नहीं हैं। आप सदृश उत्साह-वर्द्धक हितैषी मित्र की मृत्यु प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व ही हो गई, इस सहयोग की शून्यता और श्रीमान् के चिर वियोग से लेखक को भी महान् शोक हुआ है, किन्तु फिर भी वह अपने हृदय पर सन्तोष का पत्थर रखकर जगद्पति जगदीश्वर से यही प्रार्थना करता है कि, वह उनकी आत्मा को स्वर्ग में शान्ति प्रदान करे और उनके पारिवारिक स्वजनों के विरह परितप्त हृदयों पर सन्तोष का जल छिड़के, जिससे वे उस पारिवारिक गृहस्थ-जीवन की नाव को भवसागर पार करने में समर्थ हों, जिसे श्रीमान् आज मंझधार में छोड़कर परलोक-वासी हुए हैं।

आज इस पुस्तक के प्रकाशन के समय जो कहीं वे महानुभाव इस संसार में जीवित होते तो अपनी प्रिय प्रेरणा से विरचित इस रचना के समर्पण को सहर्ष स्वीकार करते हुए स्नेह एवं वात्सल्य से इसी प्रकार गद्गद् हो जाते, जिस प्रकार कोई पिता अपने नवजात प्राण-

धार पुत्र को प्रथम बार गोद में खिलाते हुए प्रसन्नता तथा हर्ष से द्रवीभूत हो जाता है। इसी विश्वास को हृदय में धारण करके लेखक, उनके भौतिक रूप से स्थूल शरीर के अभाव में, अपनी इस रचना को श्रद्धाञ्जलि स्वरूप उनकी महान् आत्मा की भेंट कर रहा है और आशा कर रहा है कि उनकी आत्मा इसे स्वीकार करके लेखक को कृतकृत्य करेगी और उसके शोकपूर्ण हृदय को शान्ति प्रदान करेगी।

श्री डाक्टर साहब के वंश-परिचय के विषय में यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि आप बनारस जिले के एक सम्भ्रान्त राजपूत (क्षत्रिय) सरदार थे। आपके पूज्य पिता स्वर्गीय श्री ठाकुर प्रसिद्ध नारायण सिंह जी वहां के देहाती इलाके के एक सुप्रसिद्ध ज़मींदार होते हुए भी अपने स्वास्थ्य के बिगड़ जाने के कारण चिकित्सा एवं उपचार के लिए औषधि आदि की सुविधा के विचार से देहात को छोड़कर स्थायी रूप से बनारस नगर के नई बस्ती मुहल्ले में निवास करने लगे थे।

वहीं पर श्री डाक्टर साहब का जन्म सन् १९०१ ई० में हुआ। आप अपने पिता के तृतीय सुपुत्र होकर स्ववंशोजागर प्रमाणित हुए। आपके प्रथम ज्येष्ठ भ्राता श्री ठाकुर विजयनारायणसिंह जी आपके वियोग-शोक में आपके निधन के छः मास के अन्तर्गत ही इस संसार को छोड़कर चले गये। आपके द्वितीय ज्येष्ठ भ्राता श्री ठाकुर जगदीशनारायण सिंह जी बनारस में ही रहकर वकालत करते हैं। आपके कनिष्ठ भ्राता त्यागी और तपस्वी देश-सेवक श्री ठाकुर त्रिभुवननारायणसिंह जी संसद-सदस्य दिन-रात देश-सेवा में रत रहते हैं।

श्री डाक्टर साहब की शिक्षा-दीक्षा का केन्द्र बनारस ही रहा और वहीं के हिन्दू विश्वविद्यालय से आप एम० एस-सी० पास करके एक स्नातक होकर निकले। अध्ययन समाप्त हो जाने के उपरान्त भी आप अपने विद्या-प्रेम का परिचय प्रदान करते हुये अध्यापन कार्य में ही संलग्न हो गये और बड़ी लग्न से उसका सम्पादन करने लगे। इसी अवस्था के

अन्तर्गत सन् १९२७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से आपने गणित विषय में डाक्ट्रेट प्राप्त कर लिया। सन् १९२८ में लैक्चरर और फिर क्रमशः प्रोफ़ेसर तथा डीन आफ़ दी फ़ैकल्टी आफ़ साइन्स हो गये। अपनी गम्भीर गवेषणा के पश्चात् आपने गणित विषय पर कई विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं जो अपनी श्रेष्ठता के स्वयं प्रमाण हैं। आप एक परम प्रख्यात साहित्य-सेवी और समाज-सुधारक व्यक्ति थे। आप ११ जुलाई सन् १९५४ ई० को, ५३ वर्ष की आयु होने पर, ऐसे असमय में काल के ग्रास बने, जबकि आपका भाग्य-भास्कर उन्नत होता हुआ मार्तण्ड-मण्डल में मध्यम धाम की ओर जा रहा था। आपने अपने पीछे अपनी सन्तान में चार पुत्र और तीन कन्याएं छोड़ी हैं। इसके अतिरिक्त भ्रातृज आदि से संयुक्त आपका परिवार भी अच्छा सम्पन्न है। इस समय इस परिवार का सारा भार देशभक्त श्री त्रिभुवन बाबू पर ही आ पड़ा है। ईश्वर उन्हें इस भार के वहन करने में समर्थ करे!

प्रस्तुत उपन्यास में इसके कथानक के निर्वाह तथा भाषा-भाव आदि में, सम्पादन सम्बन्धी त्रुटियाँ इसलिये रह गईं कि इसके रचना-काल में आर्थिक एवं अन्य पारिवारिक अशान्तिकारक संकट में पड़ जाने के कारण मेरा मस्तिष्क कुछ उद्विग्न रहने लगा था और वह वांछनीय गम्भीरता को प्राप्त न हो सका। अपनी इस न्यूनता के लिए प्रिय पाठकों से क्षमा-याचना करते हुये मैं उनसे अपनी इस कृति को उदारता-पूर्वक अपनाने की प्रार्थना करूँगा।

पौटाबादशाहपुर
(बुलन्दशहर)
भाद्रप्रद शुक्ला दशमी
सम्वत् २०१२ वि०

विनीत
कुँवर वीरेन्द्रसिंह रघुवंशी
धर्मकेसरी

पहला परिच्छेद

आज भारत देश में कला-कौशल, सौन्दर्य और शान के उपासक मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ का शासन-काल वर्तमान है। राजश्री की सह-गामिनी समस्त सिद्धियों अर्थात् शिक्षा, साहित्य, संगीत, शिल्प, काव्य, निर्माण-कला, चित्रकला, हस्तकौशल आदि विभूतियों ने, संसार के प्रत्येक कोने से चलकर साम्राज्य की राजधानी में डेरा लगा लिया है। अतः प्रस्तुत शासन के अन्तर्गत अद्वितीय आभा को प्राप्त आगरा नगर अपने अनु-पम तथा सुविशाल गगन-चुम्बी भव्य भवनों और राज-प्रासादों से परिवेष्टित होकर प्रकृति की प्रतिष्ठा तक को ठेस पहुँचा रहा है और परिचय दे रहा है अपने विशाल-हृदय कला-पारखी के अगम्य, उच्च तथा असीमित मंतव्यों का।

दोपहर के पश्चात् का समय है। भगवान् भास्कर पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। सन्ध्याकाल के आगमन में कुछ ही देर बाकी है। संध्या-कालीन प्रभाव के अन्तर्गत, अस्त होते हुए सूर्य की सुन्दर सुनहरी किरणें शीतल होकर राजधानी के राज-प्रासादों पर पड़ती हुई, अपूर्व आकर्षण, शुभ्र ज्योत्स्ना और असीमित आनन्द का अनुभव करा रही हैं। सब से अधिक प्रस्तुत किरणों से प्रभावित हुआ है कलकल-निनादिनी यमुना नदी का अठखेलियाँ करके बहने वाला नीलवर्ण निर्मल वारि, जिसने उनके साथ मिलकर, तथा रंग-बिरंगी फुलझड़ियाँ बनाकर दर्शकों के प्रमोदार्थ वायुमण्डल में छोड़ना आरम्भ कर दिया है। सन्ध्या काल का आगमन पाकर मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी अपनी दिनभर

की दौड़-धूप समाप्त करके, अपने-अपने निवास-स्थानों की ओर जाने लगे हैं। दिनभर जनसमुदाय से भरपूर एवं व्यस्त रहने वाले नगर की चहल-पहल अब कुछ कम होने लगी है। योंही धीरे-धीरे स्वयात्रा समाप्त करके सूर्य भगवान् ने अपना मुँह अन्तरपट के अन्दर छिपा लिया। दिवसपति की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर, अन्धकार निश्चित रूप से बढ़ने लगा। उसके प्रभाव को क्षीण करने के लिये मानव-समाज ने कृत्रिम उपादानों अर्थात् दीपों का सहारा लिया किन्तु वे असफल सिद्ध होकर इसी उक्ति के समर्थक प्रमाणित हुए कि 'मानव-कृत कृत्रिम उपादान प्राकृतिक प्रगति पर विजय पाने में सर्वथा असफल रहते हैं।'

अन्धकार का आगमन पाकर सामान्य राह-वाटों की कौन कहे, शाही मार्ग भी प्रायः जनशून्य हो गए हैं। किन्तु एक व्यक्ति इस समय भी यमुना के जल की ओर पैर लटकाये शाह घाट की एक पैड़ी पर बड़ी देर से विचार-मग्न होकर इस प्रकार उठने का नाम न ले अविचल भाव से बैठा है, जैसे पत्थर की प्रतिमा हो। उसने प्रकाश और अन्धकार दोनों का चित्रदर्शन किया है पर तो भी उसका दिल नहीं भरा। कभी-कभी उसके मुँह उठाकर उत्सुक नेत्रों के इधर-उधर देखने की क्रिया से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह किसी अन्य व्यक्ति की प्रतीक्षा में हो और वाँछित व्यक्ति निश्चित वेला को व्यतीत करके भी साक्षात्कार को नहीं आया हो। प्रस्तुत व्यक्ति के विशाल डील-डौल, बलिष्ठ शरीर और तेजस्वी मुख-मुद्रा तथा राजसी लिबास एवं तड़क-भड़क से ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह कोई राजा, महाराजा अथवा सम्राट् का सगा-सम्बन्धी या बड़ा ताज़ीमी मन्सबदार हो। तब प्रश्न उठता है कि ऐसा असाधारण व्यक्ति एकाकी रूप से निर्जन स्थान पर ऐसी अवस्था में क्यों बैठा है? लीजिए पाठक! आपकी उत्सुकता निवारण करने के लिये वह कुछ कह भी रहा है।

"इस मूर्खता की भी कोई सीमा है कि आमेर-नरेश महाराजा

जगतसिंह ऐसे अनुपयुक्त स्थान पर असमय में बैठकर एक तुच्छ शाही दासी के आगमन की प्रतीक्षा करता रहे और वह, इस तरफ पैर बढ़ाने का नाम भी न ले। जब केवल संकेत मात्र पर उसकी मृत्यु हो सकती है तो फिर यह अवज्ञा क्यों ?"

इस कथन का अन्तिम वाक्य मुँह से निकला ही था कि एक स्त्री ने बड़ी श्रद्धा और विनयपूर्वक अर्थात् अदब के साथ उसका अभिवादन करते हुये तथा इस प्रकार का अभिनय उपस्थित करते हुये कि उसके देर होने के कारण भय से प्राण निकले जा रहे हैं, उक्त स्थान में प्रवेश किया। प्रथम व्यक्ति ने उसकी ओर कटु दृष्टि से देखकर कहा, "मुरादन, क्या तुमको मालूम नहीं कि हम कब से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं ?"

"मुझे बड़ा अफ़सोस है इसके लिये। मैं मजबूर थी शाही हाजत में ली जाने की वजह से, सरकार ! मुझे माफ़ी मिले।" दासी की विनयशील मुखमुद्रा देखकर युवक महाराज का क्रोध शान्त हो गया और वह मुस्कराकर बोले "किसी मनुष्य को अकारण तंग करना और फिर बहाना बनाकर जले पर नमक छिड़कना ? तुम शैतान हो, इसकी सज़ा दी जायगी।"

"नहीं हुज़ूर, मैं कलाम की कसम खाकर अर्ज़ करती हूँ कि मुझे बादशाह की पेशी में रहने की वजह से मजबूरन रुकना पड़ा, नहीं तो कनीज़ा हर वक्त सर-आँखों के बल सरकार के हुज़ूर में रहने और खिदमत करने को तैयार है।"

"अच्छा खैर ! जाने दो व्यर्थ की बातों को; बोलो, वहां का क्या समाचार है ?"

"मैंने उसका गज़ब ढाने वाला हुस्न अपनी आँखों से देखा है, सरकार !"

"क्या उसका वास्तविक सौन्दर्य उसके चित्र-सौन्दर्य से भी बढ़कर है ?"

"कहीं ज्यादा सरकार··· ! उसका रूप क़यामत ढाने वाला है ।"

"क्या वह शाहजादी रोशनआरा से भी ज्यादा खूबसूरत है ?"

"शाहजादी रोशनआरा तो उसके पैर का धोवन भी नहीं है, हुजूर ! उसे तो जमीन का ऐसा चाँद कहिये, जिसका सानी दुनियाँ में दूसरा है ही नहीं ।"

"अच्छा ! यह बताओ कि उससे मिलने का तुम्हें अवसर कैसे मिला ?"

"इसमें क्या मुश्किल थी, हुजूर ! मैं मनिहारिन का वेश बनाकर चूड़ियाँ बेचने के बहाने राजमहल में चली गई थी ।"

"तो तुमने उस पुष्प को नजर भर कर स्वयं देख लिया, क्यों ?"

"जी हाँ सरकार ! देख ही नहीं लिया बल्कि बात-चीत भी कर ली ।"

"तुम्हारे सामने वह हँसी और मुस्कराई भी तो होगी न ? उसके दाँत······चमक···"

"क्या पूछिए, हुजूर ! उसके हँसने पर फूल से झड़ने लगते थे और उसके दाँत ऐसे चमक जाते थे, जैसे अनारदाने के गुच्छे या मोतियों के लच्छे हों । मुझ बूढ़ी कुरूपा की तो उन लोगों ने बड़ी खिल्ली उड़ाई थी । बड़ा मजा आया ।"

"आह!तुमने तो मेरे घावों को और भी ताजा बना दिया, मुरादन !"

"काश कि मुझ को यह मालूम होता कि मेरी बातें हुजूर को अच्छी नहीं लगेंगी, तो ऐसा कहने से पहले अपनी ज़बान को कटवा लेती ।"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है, मुरादन ! जब बिना देखे ही इतना प्रेम बढ़ गया कि एक तरह का नशा-सा मेरे ऊपर सवार होने लगा और हो गया दिल टुकड़े-टुकड़े तो जो कहीं उसके दर्शन हो गये तो न जाने क्या होगा ?"

"इश्क ऐसी ही बला है सरकार ! क़यामत हो जायगी क़यामत।"

"क्या तुमने किसी राजा-रईस की चर्चा उसके दिल की यह थाह लेने को नहीं छेड़ी कि उसका दिल किसी भाग्यवान् की तरफ से प्रभावित हुआ है कि नहीं ?"

"न छेड़ती तो वहाँ जाने ही से क्या फ़ायदा था हुज़ूर ! अगर आप जैसे बड़े आदमियों का नमक-धानी खाकर उसे हलाल करने की भी बुद्धि इस दासी मुरादन में न होती तो इस पत्थर की मूरत को पूछता ही कौन ?"

"नहीं, मैंने यह प्रश्न इसीलिये किया क्योंकि तुम्हें विस्तार के साथ यह पहले बतलाया नहीं गया था न !"

"क्या ज़रूरत थी सरकार ! दासी ने मालिक का मन्शा इशारे से ही समझ लिया था ?"

"अच्छा, बताओ मेरा क्या अभिप्राय था ?"

"वही जो भौंरे का फूल से या चातक का चन्द्र से होता है।"

"निस्सन्देह तुम तो बड़ी चतुर हो ! खैर, आगे चलो।"

"मैं चूड़ियों के साथ-साथ तसवीरें भी बेचने के लिये लेती गई थी और मैंने सारी तसवीरें उसके सामने खोलकर रख दी थीं।"

"क्या वह उस समय वहां अकेली थी ?"

"नहीं सरकार ! उसकी तीन-चार सहेलियाँ उसी उम्र की उसके साथ थीं।"

"अच्छा तो तुमने चित्र खोलकर दिखाये। फिर क्या हुआ ?"

"मुस्लिम रईसों की तसवीर तो उसने नाक चढ़ाकर बिना देखे ही लौटा दीं।"

"और हिन्दू रईसों की ?"

"उनमें से उसने तीन तसवीर लेकर उनकी कीमत मालूम करनी चाही।"

"तब तुमने क्या उत्तर दिया?"

मैंने कहा, 'राजमहल में तसवीर की कीमत ही क्या? जो पसन्द आगई उसका खुशी से आप ही इनाम मिल जाता है।"

"तो वे चित्र किस-किस भाग्यवान् के थे और तुम्हें क्या पुरस्कार मिला?"

"तीन तसवीर, एक महाराणा कर्णसिंह मेवाड़ की, दूसरी बूँदी के महाराज छत्रसाल की और तीसरी तसवीर हुज़ूर की, उसके पसन्द आईं और उनकी क़ीमत के रूप में उससे मुझे तीन मुहरें मिलीं।"

"क्या सच कहती हो कि उसने मेरा चित्र भी खरीदा?"

"क्या दासी सरकार के सामने झूठ बोलने का भी हौंसला कर सकती है, हुज़ूर?"

"अच्छा, तुम्हारी बातों से सीने में प्रसन्नता की गुदगुदी पैदा होती जा रही है। कुछ उन भावों पर और प्रकाश डालो तो जो उन चित्रों को देख कर उसके हृदय में उत्पन्न हुये।"

"पहले उसने तीनों तसवीरों पर निगाह डाली और फिर उनमें से एक तसवीर को इतने ग़ौर से देखा कि देखते ही देखते उसका चेहरा खुश्क हो गया, आँखें पानी से तर-बतर हो गईं और हाथ ऐसे काँपने लगे जैसे मानो तसवीर हाथ से गिर जायगी।"

"क्या तुमने यह ध्यान नहीं किया कि ऐसा किस के चित्र पर हुआ?"

"यह जानने की कोशिश तो मैंने बहुत की, पर ख्वाहिश पूरी न हो पाई। मगर ख्याल है कि शायद ऐसा हुज़ूर ही की तसवीर पर हुआ होगा।"

"क्या, कुछ और रहस्य भी प्रकट हुआ था क्या?"

"हाँ, उसके चेहरे की खुशी और बेफिक्री उस वक्त बिल्कुल काफ़ूर हो गई थी। चेहरे पर उदासी छा गई, सीना धकधकाने लगा, तमतमाहट से मुँह लाल होकर पसीने से तर-बतर हो गया और आँखें सजल होकर सीप सी चमकने लगीं।"

"उसकी आकृति उस समय बड़ी सुन्दर लगती होगी।"

"हद से ज्यादा सुहावनी, सरकार! क्या कहना?"

"क्या ही अच्छा होता, मुरादन! जो कहीं मैं किसी तरह उस पुष्प को प्राप्त करके अपने विरह से धड़कते हृदय का हार बना पाता।"

"मुरादन के सलामत रहते मायूस न हों, सरकार! यह उसे हुज़ूर के पास तक लाने में अपना खून-पानी एक कर देगी।"

"यह आमेर-नरेश भी इसके लिये तुम्हारे शरीर को लाखों रुपयों की कीमत के हीरे जवाहरातों से सजाकर चमत्कार का चन्द्र बना देगा। इसके अनन्तर इस प्रकार तुम्हें दासी से रानी बनाकर भी, वह तुम्हारा सदा ऋणी रहेगा, मुरादन! और तुम्हारे उपकार को कभी स्वप्न में भी न भूलेगा। तुम को जितने धन की आवश्यकता हो उसे लेकर कार्य को पूरा करने में लग जाओ। बेगम साहिबा से तुम्हें छुट्टी दिला दी जायगी।"

"अच्छी बात है सरकार, मैं अगले हफ़्ते इस काम के लिये जाऊँगी।"

इस वार्तालाप के अनन्तर वे दोनों प्रतिकूल दिशाओं को प्रस्थान के लिये प्रस्तुत हुए।

वाचक! अब आप इन दोनों का परिचय पा चुके होंगे? इनमें से पुरुष पात्र तो महाप्रतापी स्वर्गीय महाराज मानसिंह के सुपुत्र महाराज जगतसिंह हैं, जो अपने राज्य के स्वामी होने के साथ-साथ साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त रजवाड़ों में सर्वश्रेष्ठ नरेश गिने जाते हैं। इसी श्रेष्ठता के उपलक्ष में उनको विशेष रूप से सर्वोच्च सप्तहज़ारी मन्सब और सम्राट् शाहजहाँ की मुसाहिबी आदि के प्रमुख कार्य प्राप्त हुये हैं। इन्होंने

कहीं से रूपनगर के राजा रूपसिंह की सुपुत्री सौन्दर्य-सुषुमा किरणमयी के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर, उसकी सत्यता का पता लगाने के लिए शाही महल की प्रस्तुत दासी मुरादन को नियुक्त किया है और उसने जो विवरण वहाँ लाकर उनको दिया है उसका ज्ञान पाठक प्रस्तुत वार्तालाप से प्राप्त कर चुके हैं और उस प्रेम की कसक से भी परिचित हो चुके हैं, जिसका कि आमेर-नरेश शिकार हुये हैं। महाराज जगतसिंह तो इस वार्ता के पश्चात् अपने डेरे को चले गये; किन्तु मुरादन, जब अपनी सफलता पर प्रसन्न होती हुई, राजमहल की ओर को मुड़ने लगी तो उसका एक दूसरे युवक सरदार से सम्पर्क हो गया; जिसे अम्बर-नरेश के समान ही रौब-दाब वाला कहना होगा। दासी ने उस सरदार को भी नम्रता और ताज़ीम के साथ सलाम किया। मुरादन को पहचानकर सरदार ने हँसकर कहा—

"जियो, मुरादन ! मेरे चाँद जियो !! आजकल तुम्हारी मुलाक़ात ही नसीब नहीं होती। क्या बात है, किन मामलों में उलझा रहता है यह नूरे आलम ?"

मुरादन—रुहेलखण्ड के नवाब जनाव शेरशाह साहब के वास्ते बन्दी का जी-जान सब कुछ हाज़िर है। कुछ दिन से बाँदी बाहर मुहीम पर चली गई थी। मेरे लिये जो खिदमत हो बताई जाय।

अब पाठकों को मालूम हो गया होगा कि जो सरदार मुरादन के साथ अब दूसरी बार मिलकर बातचीत में संलग्न हुआ है वह रुहेला नवाब शेरशाह है।

शेरशाह—(हँसकर) मुरादन जैसी नाज़ुक-बदन कामिनी और यह मुहीम ? खैर, किस बदनसीब शाह या राजा-महाराजा को फतह करने गई थीं मेरी मौज्ज़मा ? क्या इस ख़ाकसार को ऐसे छोटे-मोटे कामों के लिये भी काफ़ी नहीं समझा गया ?"

मुरादन—सरकार ! बाँदी को शरमिन्दा न करें। आमेर के महाराज

ने अपने एक निजी काम से मुझे रूपनगर भेजा था ।

शेरशाह—(आश्चर्य प्रकट करते हुये)—रूपनगर ! रूपनगर उन्होंने तुम्हें क्या करने के लिये भेजा था ? और ख़ासकर तुम्हीं को क्यों भेजा गया ?

मुरादन—सरकार ! उन्होंने एक बात की सच्चाई की जाँच करने के लिये मुझे भेजा था और मुझ ही को उन्होंने इसलिये भेजा, क्योंकि मेरे बेटे की वहाँ पर कपड़े की दुकान है और मैं वहाँ की हरएक बात से वाकिफ हूँ ।

शेरशाह—महाराज साहब ने तुम्हारी मार्फत किस बात की सच्चाई की जाँच कराई है, ज़रा बताओ तो मुरादन !

मुरादन—इतना ही कि रूपनगर की बड़ी राजकुमारी बड़ी खूबसूरत औरत है ।

शेरशाह—तो तुमने मालूम करके उन्हें क्या बताया ?

मुरादन—यही कि उसके बराबर हसीन दुनियाँ के परदे पर भी कोई नहीं है ।

शेरशाह—क्या वाकई वह ऐसी खूबसूरत है ?

मुरादन—खुदा कसम हुज़ूर, मैंने ऐसी खूबसूरत औरत दूसरी आज तक नहीं देखी ।

शेरशाह—क्या वह शाहजादियों से भी ज्यादा हसीन है ?

मुरादन—बेशक सरकार ! उनसे कहीं ज्यादे ।

शेरशाह—क्या आमेर महाराज साहब उस पर जी-जान से फ़िदा हैं ?

मुरादन—मुझसे उसकी खूबसूरती की ताईद हो जाने पर तो वे जैसे मजनूँ ही बन गये हैं, सरकार ! वे मुझे वहाँ फिर भेजना चाहते हैं।

शेरशाह—सूत्रा डोरा डालने, क्यों ?

मुरादन—जी सरकार !

शेरशाह—हूँ ! मगर ताज्जुब है कि उन्होंने इस राज़ को अपने दिली

दोस्त शेरशाह तक से भी छिपा लिया। बेटा, हम से छिपाकर फ़ायदा भी क्या उठायेंगे ?

मुरादन—नहीं सरकार, अभी छिपाने या बताने की नौबत ही कहाँ से आती। अभी तो उन पर इश्क ने रंग चढ़ाना शुरू ही किया है।

शेरशाह—अच्छा ठीक है। जाओ। मगर महाराज के दरिया में गोते लगाकर कहीं हमारे जैसे नदी-नालों को मत भूल जाना।

मुरादन—भला यह भी कहीं मुमकिन है, सरकार ! आपके वास्ते तो बन्दी के जी-जान हाजिर हैं; क्योंकि आप तो अपने निजी हैं और उनका रहा सौदा लेन-देन का।

इसके पश्चात् मुरादन तो राजमहल को चली गई। किन्तु शेरशाह को आमेर-नरेश से बिना मिले सन्तोष नहीं हुआ और वे अपने घर जाने का विचार छोड़कर शीघ्रगति से बढ़ते हुये आमेर-नरेश के डेरे पर जा पहुँचे। इस समय उनका मस्तिष्क राजनीतिक संसार में घूम रहा था। महाराज जगतसिंह भोजन आदि से निवृत होकर अपने दीवान-खाने में आकर विराजे ही थे कि उनको चोबदार ने नवाब रुहेला के आने की सूचना दी। महाराजा साहब ने अपने सरदार भूर सिंह को भेजकर नवाब साहब को सम्मान पूर्वक लाने की व्यवस्था करदी। निकट आने पर आपने स्वयं अपने स्थान पर खड़े होकर उनका स्नेह-पूर्वक स्वागत किया और अपने समीप बैठाकर निम्न प्रकार से बात-चीत की :—

"इस समय हमारे योग्य किस सेवा की आवश्यकता पड़ गई जिसके कारण इतनी रात को असमय में दर्शन देने का कष्ट किया, नवाब महोदय ?"

"कोई खास बात तो नहीं थी। सिर्फ जनाब को सलाम अर्ज़ करने ही की गर्ज से इधर आ निकला। क्योंकि कई दिन से जनाब का नियाज़ ही हासिल नहीं हुआ था।"

"बड़ी कृपा की आपने ! और कोई विशेष समाचार सुनाइये।"

"रूपनगर की बड़ी राजकुमारी के हुस्न की बड़ी शोहरत है; न जाने यह कहाँ तक ठीक है ?"

"सुना तो हमने भी है, आगे ईश्वर जाने।"

"अपने किसी खास आदमी को भेजकर इस अमर की सचाई की जाँच करा लेनी चाहिये।"

"रूपनगर में मुरादन का लड़का दुकान करता है। जब वह उससे मिलने वहाँ जा रहा थी तो हमने उसे इस बात की सचाई की जाँच भी सौंप दी थी। उसने आकर भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की है।"

"मुझे कितनी खुशी हो अगर वह फूल जनाब को हासिल हो जाय तो।"

"आपके अनुग्रह के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद ! आपके समान एक हितैषी मित्र को पाकर हम अपने आपको परम सौभाग्यशाली समझते हैं।"

"तो जनाब की मंगनी के लिए दूसरी तरफ का क्या खयाल है ?"

"उधर का तो कोई पता नहीं मालूम, किन्तु मेरे हृदय की दशा तो ऐसी शोचनीय है कि उसका विचार करके तो यही कहना होगा कि वह पुष्प मुझे प्राप्त होना ही चाहिये।"

"फिर उसके पाने की तरकीब भी जनाब ने कोई सोची होगी ? मेरे खयाल से राजी-खुशी आसानी से तो उस गुल का हाथ लगना बहुत मुश्किल जान पड़ता है।"

"हमने तो अभी इसकी कोई तरकीब सोची नहीं है और न इस तरह की योजना कोई हमारे मस्तिष्क में ही है। हम तो ऐसी बातों के लिये सदा आप ही पर निर्भर रहते आये हैं और आगे भी रहेंगे।"

"अच्छी बात है,ऐसा है तो अब देखिये ज़रा बन्दे की भी होशियारी।"

इसके पश्चात् उन दोनों के अन्दर कुछ बातें कानों में हुईं जो सुनने में नहीं आईं। इसके अनन्तर महाराज तो नवाब रुहेला को सहर्ष विदा करके अपने शयन-कक्ष में चले गये और नवाब साहब वहाँ

से सीधे अजमेर के सूबेदार कासिम खां के घर पर पहुँचे। वे वहाँ पर देखते क्या हैं कि कासिम खाँ इस समय अपने दीवानखाने में बैठे महफ़िल का मज़ा ले रहे हैं। दीवानखाने में तबला, सरंगी आदि बाजे बज रहे हैं और एक नर्तकी अपनी ज़र्क-वर्क कीमती पोशाक को फड़फड़ाती हुई अपने नाच और गान की दक्षता से उपस्थित लोगों को मंत्र-मुग्ध कर, उनसे ठण्डे प्रहारों के द्वारा धन उगलवा रही है। एक-एक अदा और एक-एक स्वर-मंजरी पर रुपयों की वर्षा होने लगती है। मुजरे की हरएक ताल पर, खाँ साहब, जो कि उस महफ़िल के नौशा हैं, उसकी कार्य-कुशलता की द्रव्यदान द्वारा स्वागत और सराहना कर रहे हैं।

शेरशाह भी वहां पहुँचकर प्रस्तुत मनोरंजन में सम्मिलित हो गये। जब वह जशन समाप्त हो गया; तब कहीं शेरशाह और कासिम खाँ को वार्तालाप करने का अवसर मिला। रूपनगर की राजकुमारी के सौन्दर्य और आमेर-नरेश की इच्छाओं पर प्रकाश डालते हुए शेरशाह ने उस मामले में अपनी अभिरुचि का कारण और सूबेदार को उनका कार्य समझाया। कासिम खाँ ने उनके प्रस्ताव को तो स्वीकार कर लिया किन्तु अपने भाग का स्पष्टीकरण अवश्य चाहा। इसका शेरशाह ने एक ऐसे रहस्य-मय एवं कूटनीति-पूर्ण ढंग से उत्तर दिया कि सूबेदार प्रसन्न होगए। अन्त में योजना की सारी बातें भले प्रकार ध्यान में रख लेने के पश्चात् उसे शीघ्रातिशीघ्र कार्यरूप में परिणत करने का निश्चय हुआ। यह भी निर्णय हो गया कि दूसरे ही दिन सूबेदार अजमेर के लिए प्रस्थान कर देंगे और वहाँ पहुँचकर योजना-सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं के जुटाने का प्रबन्ध करेंगे तथा प्रत्येक कार्य की सूचना शेरशाह को देते रहेंगे।

वहाँ से चलकर शेरशाह सम्राट् के प्रधान-मंत्री तहव्वर खाँ से मिले और उनको सारी परिस्थिति से परिचित कराते हुए उनसे उस

बात की प्रार्थना की और उन्हें उस कार्य को करने के लिये तत्पर किया, जो भारत सम्राट् को प्रेरित करके, उनके द्वारा ही कराये जाने के लिये निश्चित था। इसके उत्तर में तहव्वर खाँ की पहली बातें उसी प्रकार की हुईं जैसी की सूबेदार कासिम खाँ ने कीं, किन्तु नवाब रुहेला भी तो पूर्ण रूप से सुलझे हुए घाघ और नीति-कुशल व्यक्ति हैं। शीघ्र ही उनकी शंका निवारण करके अपने कार्य को करने के लिए उन्हें सहर्ष तत्पर कर लिया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने स्थान का मार्ग लिया। आज की दौड़-धूप के कारण उनका शरीर थककर चूर-चूर हो गया है। किन्तु कार्य की सफलता-पूर्वक व्यवस्था हो जाने से उन्हें बड़ा सन्तोष है। अतः अपने डेरे पर पहुँचकर शान्ति के साथ वे स्वशयन-कक्ष में आकर विश्राम करने लगे हैं।

दूसरा परिच्छेद

आज सारे दिन बड़ी तेज़ गर्मी रही है। इस गर्मी की ज्वाला से तप्त होकर संसार मानो झुलस-सा गया है। भगवान् भास्कर रोष से रौद्र-रूप धारण करके दिन भर अग्नि उगलते रहे हैं। ज्येष्ठ मास की गर्मी के दिन और उस पर भी राजस्थान की जलती बालू पर बसा हुआ उसका पश्चिमी मरुस्थल भाग। इस भाड़ के सदृश उबलती हुई परितप्त बालू में यात्रा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अत: यात्री-जन ऐसे कष्टदायक समय में या तो अपने घरों से निकलते ही नहीं और यदि निकलते भी हैं तो छाता आदि अनेक रक्षा के तद्विरोधी अनुदानों को लेकर। इसके उपरान्त जिस समय गर्मी अत्यधिक तेज़ हो जाती है, तो वे काम छोड़कर विश्राम करना आरम्भ कर देते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी लोह-पुरुष हैं जो कष्टानिष्ट की परवाह न करके प्रकृति के साथ भी संघर्ष में तत्पर हो जाते हैं। इस समय हमें यहाँ उन यात्रियों का विवरण देना वांछित नहीं जो ऐसे असुविधाजनक समय में या तो घर से निकलकर कहीं जाते ही नहीं और यदि निकलकर चल भी देते हैं तो वृक्षादि की छाया में विश्राम करने लग जाते हैं और तब तक उठने का नाम नहीं लेते, जब तक कि सूर्यदेव पश्चिम की ओर मुँह फेर कर अपनी गर्मी को कुछ कम नहीं कर देते। हम यहाँ पर उन कर्मवीरों का विवरण देना चाहते हैं, जो सर्दी-गर्मी, धूप-छाँह, सुख-दुःख किसी

वस्तु की परवाह न कर संघर्ष में तल्लीन हो कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर हो स्वकार्य में जुट जाते हैं और सफल होकर ही दम लेते हैं। हाँ, तो जिस दिन की गर्मी का हम उल्लेख कर रहे हैं उस दोपहर के समय ताप से पीड़ित होकर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी वृक्षों और झाड़ियों में जा छिपे हैं। किन्तु एक जन-यूथ इस उगलती ज्वाला में भी ठहरने का नाम न ले लगातार चलता ही जा रहा है। प्रस्तुत जन-यूथ किस प्रकार का है और किस अनिवार्य कारण-वश कहीं विश्राम करने का नाम नहीं लेता, यह हमारे विचार का विषय है। वाचक ! आप शायद यह सोचते होंगे कि यह कोई बरात है जो आने वाली रात्रि की शादी की धूम-धाम, आमोद-प्रमोद तथा प्रीति-भोज आदि की प्राप्ति के चाव में कष्टा-निष्ट को न गिनकर शीघ्र पहुँचने के विचार से निरन्तर चली जा रही है अथवा किसी आक्रमणकारी सेनानी की वह वाहिनी है जो चाहे किसी नृप की ओर से हो या डाकू की ओर से, निरीह और निरपराध जनता को लूट कर धन से जेबें भरने के चाव में समयासमय, दुःख-सुख या जीवन-मरण का विचार न कर आगे बढ़ी चली जा रही है। अपरंच यह भी अनुमान हो सकता है कि यह किसी पर-दुःख को न समझने वाले उस हृदयहीन राजा या राज-कर्मचारी का सैलानी बेड़ा है जो अन्यथा दण्ड को इस ज्वाला के कष्ट से भी अधिकतर दारुण जान उसके विरोध में मुँह खोलने तक का प्रयास ही नहीं कर सकता और स्वयं को केवल भगवान् की दया पर छोड़, नाना कष्ट सहते हुए भी उसको केवल भाग्य का चक्र जान चुप हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों की भगवान् ही रक्षा किया करता है कारण कि जब एक व्यक्ति बलिदान को अपना अमिट अथवा अनिवार्य ध्येय तथा कर्तव्य मान अपने प्राणों की भी परवाह न कर, उसके लिये शुद्ध हृदय से तत्पर हो जाता है तो संसार की ऐसी कोई शक्ति या उपलब्धि नहीं जो उसके लिए सुगम न हो और उसकी सफलता का मार्ग साफ कर, उसके आगे घुटने न टेक दे; अर्थात्

बलिदानी वीर के उन्नतिशील मार्ग में अवरोधक तत्त्व बन कर कोई शक्ति ठहर नहीं सकती। सफलता में देर सम्भव है किन्तु, अन्धेर नहीं। अब पाठक! आप प्रस्तुत जन-यूथ के विषय में अवश्य यह जानने के लिये उत्सुक होंगे कि वह किस प्रकार का है जो इस समय यात्रा कर रहा है? यह रूपनगर नरेश की दौरे की टोली है। इसमें हाथी, घोड़े, सुखपाल, पालकी, छकड़े आदि सभी प्रकार के वाहन हैं। मनुष्य भी, सैनिक और नागरिक, दोनों ही प्रकार के इसमें सम्मिलित होकर इसे खिचड़ी बना रहे हैं। अब इस यूथ को किस श्रेणी में गिनेंगे, इसका निर्णय तो आप पाठकों पर ही छोड़ते हुये हम यहाँ केवल इतना कह देना ही उचित समझते हैं कि भारत-सम्राट् शाहजहां के किसी अति आवश्यक आह्वान पर प्रस्तुत महाराज रानी तथा दास-दासियों सहित राजधानी को प्रस्थान कर रहे हैं। राजधानी से लौटने तक अपने राज्य के प्रबन्ध के लिये अपने पुत्र एवं युवराज विक्रमकुमार को छोड़ दिया है जो अपने पिता की अनुपस्थिति में राज्य-भार सम्भालेंगे। सम्राट् का शीघ्रातिशीघ्र मिलने का आज्ञा-पत्र पाने के कारण वे बिना विश्राम तथा समयासमय का विचार किये, कूँच-पर-कूँच करते चले जा रहे हैं। इन लोगों ने ऐसी कई दोपहरियाँ चलने में ही व्यतीत की हैं। दिन-भर चलते रहने का इनका निश्चित कार्य-क्रम है। अतः सूर्य के पश्चिम की ओर मुँह फेर लेने और वायु-मण्डल के शीतल हो जाने पर भी वह टोली अपनी क्रिया में यथावत लीन है।

सन्ध्याकाल के आने तथा दिवसपति के अन्तरध्यान होते ही आकाश-मण्डल मेघाच्छन्न हो गया है। इस समय यह रूपनगर की राज-मण्डली अरावली की उन उपत्यकाओं के पार करने में निमग्न है जो ढूँडार प्रदेश पर आच्छादित हैं। मार्ग पर्वतों की उन कन्दराओं में से होकर जाता है जो इधर-उधर दोनों तरफ़ ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों से घिरी हुई हैं। इन्हीं कन्दराओं में होकर एक नदी बहती है

और शायद उसी के जल ने पहाड़ी को काट कर अपना मार्ग बनाने के लिये ही इनको जन्म दिया है। इस स्थान के चित्र को विशेष रूप से समझने के लिये यों कहना चाहिये कि जैसे एक गोलाकार घेरे को एक रेखा दो स्थानों पर काट देती है उसी प्रकार पर्वत-श्रेणी से घिरे एक छोटे-से चौरस मैदान को शेष समतल भूमि से मिलाने के लिये नदी ने उन पहाड़ों को दो स्थानों पर काटकर दो घाटियाँ बनादी हैं, जिनमें से एक मैदान में प्रवेश करने और दूसरी उससे बाहर निकल कर दूसरी ओर जाने का मार्ग बनाती है। सन्ध्या के समय रूपनगर की यह टोली एक घाटी को पार करके उसी मैदान में पहुँच गई है जिसका कि हम वर्णन कर रहे हैं। इसी समय पीछे से और अधिक सघन काले-काले बादल आकर भयंकर रूप धारण कर आकाश में उनकी तरफ़ तेज़ी से बढ़ने लगे। कुछ-कुछ गर्द-गुबार भी उड़ने लगा और साँय-साँय की आवाज़ सुनाई देने लगी। थोड़ी ही देर में मेघ की बौछारों के साथ उठती हुई आँधी के झोकों ने पूर्णतया उस घाटी को घेर लिया। झंझा के झोंकों के साथ रेत के कण मिले हुये चले आ रहे हैं जो सैनिकों के मुँह पर इस प्रकार लग रहे हैं, मानो बन्दूक में भर कर बजरी के छर्रे मारे जा रहे हों। आँखों में गिर कर रेत उन्हें खसखसी बनाकर बन्द कर रहा है। इसके साथ ही साथ वे बड़ी-बड़ी बूँदें, जो पृथ्वी पर पटाक-पटाक पड़ रही हैं, दृश्य को और भी अधिक अरुचिकर बना रही हैं। प्रस्तुत झंझावात के अन्तर्गत इस मण्डली ने, ज्यों ही आगे के दर्रे में प्रवेश करने के लिये पैर बढ़ाये कि ऊपर से ईंट-पत्थरों की वर्षा होने लगी। अगला मार्ग बन्द पाया गया। पिछले की जाँच की गई तो वह भी बन्द मिला। अब तो उनको ऐसा जान पड़ने लगा कि किसी शत्रु ने उन्हें इस प्रकार से इसी चूहों की चूहेदानी सदृश चौबन्दी में बन्द कर समाप्त करने का निश्चय किया है। किन्तु यह रहस्यमय शत्रु कौन है और किस अपराध-वश इस घाटी में छिपकर उनको समाप्त किये देता है, इसका कुछ पता नहीं

चल सका। बूँदों के साथ-साथ आते हुये तीक्ष्ण वायु के झोंके इस घाटी पर विचित्र ढंग से अपनी अलग चढ़ाई कर रहे हैं। रात्रि के आगमन और आकाश के मेघों से आच्छन्न होने के कारण अन्धकार इतना प्रगाढ़ हो गया है कि हाथ में हाथ मारने पर भी कुछ नहीं सूझता। यह मण्डली इस प्रकार की चिन्ताओं में निमग्न हो ही रही है कि शत्रु ने पहाड़ों की चोटियों पर से नीचे उतर कर चारों तरफ़ से घेरा डालते हुये हल्ला बोल दिया। आक्रमणकारी चतुर सेनानी के अधीन 'शक्ति माता की जय' का घोर रव करते हुये रूपनगर-मण्डली पर आक्रमण कर रहे हैं। रूपनगर-महाराज शत्रु के आक्रमण के प्रतिशोधनार्थ युद्धारम्भ करने से पूर्व यह जानना चाहते हैं कि उनका शत्रु कौन है और किस अभिप्राय से उनके साथ संग्राम छेड़ रहा है? इसके उत्तर में शत्रु-पक्ष की ओर से केवल इतना ही बताया गया है कि पिण्डारी सेनापति शेरेजंग ने धन की लूट के विचार से आक्रमण किया है। जब महाराज ने धन देने का भी आश्वासन दे दिया तो शत्रु की माँग राजकुमारियों तक पर पहुँच गई। इस घृणाजनक अपमान पर महाराज रूपनगर को भी अत्यन्त क्रोध आ गया और वे भी युद्ध करके प्राण देने पर तत्पर हो गये; कारण कि वे भी एक क्षत्रिय नरेश हैं और अपमान की अपेक्षा युद्ध में प्राण देने को कई गुना उत्तम वस्तु समझते हैं। अतः प्राणों के बलिदान का निश्चय करके वे अन्तिम रूप से युद्ध में संलग्न हो गये। इसलिये युद्ध ने अत्यन्त भीषण तथा भयंकर रूप धारण कर लिया। यद्यपि रूपनगर वाले हथेली पर प्राणों को रखकर बड़ी वीरता से लड़ रहे हैं, फिर भी उनका पक्ष शत्रु-सेना की गति-विधि एवं अवस्था का ज्ञान न होने के कारण हानि पर हानि सह रहा है। और पूर्ण पराक्रम के अर्थात् एक-एक वीर द्वारा अनेक शत्रुओं के मारे जाने के उपरान्त भी विजयश्री उनसे दूर होती जा रही है। इसका सब से बड़ा श्रेय शत्रु की अधिक संख्या तथा उसके परिस्थिति ज्ञान एवं उत्तम स्थान-प्राप्ति को ही दिया

जा सकता है। कुछ देर के युद्ध के पश्चात् रूपनगर वाले युद्ध में पूर्णतया परास्त हो गये। उनका प्रत्येक वीर संग्राम में काम आ गया। यद्यपि हताहत शत्रुओं की संख्या उनसे कई गुना अधिक रही है, फिर भी थोड़ी संख्या वाली रूपनगर-मण्डली को अपनी शक्ति बहुत ज्यादा अनुभव हुई है। अपने प्रत्येक सैनिक के युद्ध में लड़कर हताहत होने पर वे भी युद्ध करते हुये पिण्डारियों के द्वारा बन्दी हो गये। पिण्डारी सेनापति ने अपनी विजय घोषित करते हुये महाराज और महारानी को अपने साथ एक बन्दी के रूप में ले जाने का निर्णय किया और शेष रूपनगर वालों की मरहम-पट्टी की व्यवस्था कर अपने घर को वापिस लौट जाने का आदेश दे दिया। साथ ही उनको यह भी कह दिया कि यदि विक्रमकुमार दोनों राजकुमारियों के डोले, एक सहस्त्र घोड़े और एक लाख रुपया फिरौती के रूप में हमारे पास भिजवा देंगे तो हम उनके माता-पिता को छोड़ देंगे; अन्यथा उचित समय तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त इन दोनों को फाँसी पर लटका देंगे और बलात् वाँछित वस्तुएँ शत्रु से ले लेंगे। इसी आशय का एक पत्र भी उनके पास सीधा भिजवा रहे हैं। इस समय रूपनगर की राजकुमारियां केवल पिण्डारी दल के सेनानी शेरेजंग की दया पर हैं। पिण्डारियों का कोई किला या रहने का निश्चित स्थान नहीं है। उनका निवास पर्वतों के अन्तर्गत ही रहता है, अतः फिरौती उसी स्थान पर ही पहुँचनी चाहिये।

महाराज और महारानी को शत्रु के बन्दीगृह का अतिथि बनाकर तथा अपने मृत सैनिकों से सदा के वास्ते विदा लेकर रोते विलाप करते रूपनगर के घायल व्यक्ति कई दिन की कष्टपूर्ण यात्रा में भूखे-प्यासे भटकते हुए अपने नगर में पहुँचे और मार्ग की समस्त दुर्घटना का समाचार तात्कालीन शासक विक्रमकुमार को कह सुनाया। इस दुखद सम्वाद के पाते ही विक्रमकुमार के हृदय को बड़ा प्रबल आघात पहुँचा। राजमहलों में उसे सुनकर कुहराम मच गया। प्रत्येक स्त्री-पुरुष शोक से आँसू

बहा रहा है। राज के झण्डे नीचे झुक गए हैं। नगर-निवासियों ने शोक-चिह्न धारण कर लिए हैं। प्रत्येक स्थान शोक का अड्डा बन गया है। राजसभा में उक्त दुर्घटना और पिण्डारियों की चुनौती के विषय को लेकर, कर्तव्य का निश्चय करने के लिये विचार-विनिमय होने लगा है, जिसमें यह तय पाया है कि जब तक अधिकृत रूप से कोई सम्वाद प्राप्त न हो, इस दशा में कोई पहल न की जाय, क्योंकि यह शासन के सम्मान का प्रश्न है। इस सम्वाद को पाकर राजकुमारियाँ भी बड़ी घबरा गईं और उचित युक्ति को सोच निकालने की चेष्टा करने लगीं, किन्तु समस्या का कोई तात्कालिक हल न सूझ सका। एक नृपति द्वारा एक डाकुओं के सरदार के लिए प्रचुर धन-राशि और राज्य का मान, राजकुमारियों का बलिदान, एक अत्यन्त हेय एवं अपमानजनक प्रस्ताव है, जिसे कोई वीर राजपूत जीवन रहते स्वीकार अथवा सहन नहीं कर सकता। किन्तु दूसरी ओर माता-पिता की इस प्रकार की दुर्दशा को देखकर उनकी मुक्ति का उपाय न करना भी कोई उत्तम सन्तान सहन नहीं कर सकती, चाहे उसे कितना ही बड़ा बलिदान क्यों न करना पड़े। इसी विचार में कई दिन व्यतीत हो गए, किन्तु ऐसा कोई उपाय ध्यान में नहीं आया जो प्रस्तुत उलझन से मुक्ति दिला सके।

प्रस्तुत दुविधाजनक स्थिति के अन्तर्गत एक साधुवेषी पिण्डारी भिक्षार्थ आया और एक बटुआ छोड़ कर चला गया। नौकर-चाकरों ने यह समझ कर कि भिखारी का बटुआ भूल से रह गया है, उसे राजदरबार में पहुँचा दिया। जब दो-एक दिन उसे लेने के लिये कोई न आया तो वहाँ पर उसको खोलकर देख लिया गया। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि बटुए के अन्दर एक डिब्बा निकला है, जिसमें रूप-नगर के राजकुमार के नाम पिण्डारी सेनापति शेरजंग का पत्र रखा हुआ मिला है। पत्र का मजमून नीचे लिखे अनुसार है—

"प्रिय बन्धु, जै माता की !

आपके माता-पिता हमारे बन्दीगृह के अतिथि हैं। हमने उनकी फिरौती के रूप में कुछ वस्तुएं और प्रचुर धन की परस्पर अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के विचार से याचना की है, किन्तु दुख है कि आपने हमारी प्रार्थना पर अब तक कोई ध्यान नहीं दिया है। अब हम आपको अपने अन्तिम निर्णय की सूचना देते हैं कि यदि कृष्ण-जन्माष्टमी तक आप हमारी माँग को पूरा करने में असमर्थ सिद्ध हुए तो हमें आपके माता-पिता को शक्तिदेवी के मन्दिर में बलि का बकरा बनाना पड़ेगा और आपको अपना प्रबल शत्रु समझकर जो कुछ हमसे आपके अनिष्ट में बन पड़ेगा, करना होगा। यदि आपने हमारी माँग स्वीकार करके हमारे साथ मित्रता का व्यवहार किया तो हम सदा आपकी सहायता तथा सेवा करते रहेंगे।

विनीत—शेरेजंग 'पिण्डारी दलपति।'

इस पत्र के प्राप्त होने पर अब पिण्डारियों के दुस्साहस के विषय में कोई सन्देह ही नहीं रह गया है। अतः अब समस्या का गम्भीर रूप से कुछ न कुछ निर्णय होना ही चाहिए; यह सोचकर राज्य के महामंत्री और महाराज के अन्तरंग परामर्शदाता वयोवृद्ध श्री हरीहर पारीक की अध्यक्षता में राजभवन के अन्दर एक मंत्रणा हो रही है। इस अन्तरंग सभा में राजकुमारियाँ भी सम्मिलित हैं। विचार-विनिमय के पश्चात यह निश्चय हुआ है कि पिण्डारी सेनापति शेरेजंग को एक पत्र द्वारा यह सूचना दे दी जाय कि हमको माँगों के विषय में प्रबन्ध करने के लिये विजयादशमी तक का अवकाश चाहिए, सो दिया जाय और शेरेजंग के 'स इस पत्र के पहुँचाने तथा समय लेने का कार्य स्वयं पारीक जी के नयत्रण में हो; ताकि कुछ दिन के लिए अनिष्ट की घड़ी टल जाय। इसी समय में किसी ऐसे समर्थ नरेश को भी मित्र बनाना चाहिए जो रूपनगर राज्य के सम्मान को अपना सम्मान समझ, तद्रक्षार्थ

प्रस्तुत हो जाय, साथ ही इस कार्य को करने में समर्थ भी हो। इस पर कुमारी किरणमयी की सहेली व चचेरी बहन राजबाला ने कहा कि 'यह कार्य मेरे ऊपर छोड़ा जाय। मुझे अपने एक स्वजन की परीक्षा करनी है। परीक्षार्थ कोई उचित अवसर तथा विषय न मिलने के कारण मैं चुप बैठी रही हूँ। अब अवसर हाथ आ जाने पर उसकी योग्यता और वीरता का भी पता लगाना है।' पारीक जी के द्वारा राजबाला से उस व्यक्ति का परिचय तथा विस्तृत विवरण कार्यसाधन की क्षमता के विचार से पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया 'जिस समय मैं अपनी ननिहाल करौली में गई थी तो वहाँ मेरी अकस्मात् इन्द्रगढ़ के नरेश सरदार मौकमसिंह जी से एक सहभोज के अवसर पर भेंट हो गई। उस समय राजघराने के वहाँ पर कई स्त्री-पुरुष थे और इस दोहे की सत्यता पर विचार-विनिमय कर रहे थे कि—

'इक हाड़ा बूँदी धनी, इक राणा मेवार।
उन हिन्दुन की पति रखी, इन राखी तलवार॥'

इस पर मुझसे न रहा गया और झट कह ही तो दिया कि महाशय! अभी तक तो हाड़ा की तलवार की वीरता का कोई प्रसंग हमारी दृष्टि में आया नहीं है। हम इसकी सत्यता को किस प्रकार अंगीकार कर सकते हैं? इस पर क्रोध में आकर इन्द्रगढ़ नरेश श्री मौकमसिंह जी ने कहा, 'हाथ कंगन को आरसी क्या है, हमारी वीरता की प्रत्यक्ष आजमाइश कभी भी की जा सकती है।' अतः मैं उसी दिन से अवसर की तलाश में रही हूँ कि कब बूँदी की तलवार की परीक्षा हो। सौभाग्य से अब इस परीक्षा का विषय तथा अवसर दोनों हाथ आ गए हैं, फिर क्यों न जाँच करली जाय कि उन वचनों में कितनी सार्थकता है और हाड़ा की तलवार कहाँ तक वीरत्व प्रकट करके स्वनामधन्य हो सकती है?—

जब क्षीर भी है और यन्त्र भी है और दिल ने भी यह ठानी है।
तो साफ जाँच क्यों ना करलें, इस दूध में कितना पानी है ॥'

पारीक जी ने तथा अन्य उपस्थित सभ्य जनों ने राजबाला की युक्ति को उक्तिसंगत बताया और उसे कार्य का रूप देने का समर्थन किया। तदनुसार राजबाला के द्वारा इन्द्रगढ़ नरेश को एक पत्र लिखवाया गया, जिसमें रूपनगर की प्रस्तुत समस्या का विस्तार के साथ वर्णन किया गया और रूपनगर की प्रतिष्ठा की रक्षार्थ हाड़ा तलवार की परीक्षा ली जानी निश्चित हुई है, यह सूचना भी उन्हें दे दी गई। इस कार्य का सम्पादन भी श्री पारीक जी के ऊपर ही छोड़ दिया गया।

अगले दिन पारीक जी यात्रार्थ प्रस्तुत हो गए और दोनों कार्यों को सफलतापूर्वक करके एक सप्ताह के अन्तर्गत वापस लौट आए। उनकी योग्यता एवं कार्यकुशलता की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। पहली सफलता तो यह हुई कि पिण्डारियों के सेनापति के पास पत्र पहुँचाकर उसको बातों ही बातों में ऐसा उल्लू बनाया गया कि उसने पर्याप्त अवधि देना स्वीकार कर लिया। यहीं तक नहीं, उससे यह भी स्वीकार करा लिया गया कि इस अवधि में वह महाराज और महारानी को बन्दीगृह में किसी प्रकार का कष्ट नहीं देगा तथा उनके भोजन आदि के प्रबन्ध के लिए स्वधर्म के ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करेगा, जिन पर महाराज का पूर्ण विश्वास हो और वह भोजन आदि की सामग्री किसी प्रकार उनकी इच्छा के प्रतिकूल न हो।

इसके अनन्तर वे इन्द्रगढ़ गए। वहाँ पर उन्होंने सरदार मौकमसिंह से भेंट की और पत्र देकर रूपनगर के राजघराने की सारी संकटपूर्ण समस्या उनके सम्मुख उपस्थित की। उसको सुनकर इन्द्रगढ़ के राव साहब गम्भीर हो गए। दूसरे दिन अपने बन्धु प्रवरबूँदी नरेश श्री छत्रसाल जी से जाकर मिले और समस्त वृत्तान्त उनसे निवेदन किया। छत्रसाल जी ने पारीक जी को बूँदी आमंत्रित किया और अपने

विशेष परामर्शदाता सरदारों की अन्तरंग सभा में यह मामला विचारार्थ उपस्थित किया, जिस पर उन्होंने यही परामर्श दिया कि इस हाड़ा तलवार की परीक्षा तथा एक मित्र राजा की प्रतिष्ठा की रक्षा में हाड़ौती को अपनी बुद्धि और शक्ति दोनों जुटा देनी चाहिएं। इसके पश्चात् युवक हाड़ा नरेश श्री छत्रसाल जी ने कोटा जाकर अपने चचा वयोवृद्ध महाराज माधौसिंह जी, जिनकी वीरता की ख्याति-सुगन्धि से समस्त देश सुवासित हो रहा था, के साथ भी प्रस्तुत विषय को लेकर मंत्रणा की। कोटा नरेश ने भी यही परामर्श दिया कि रूपनगर के राजघराने की प्रतिष्ठा की रक्षा में हाड़ा तलवार उस समय, जबकि उसकी परीक्षा हो रही है, अपने म्यान से बाहर अवश्य निकलनी चाहिए। अतः सहायता का निर्णय पूर्ण हो गया। पारीक जी के द्वारा रूपनगर को यह उत्तर भिजवा दिया गया कि, 'विजयादशमी से पूर्व ही रूपनगर के महाराज और महारानी को हम बन्धन-मुक्त कराकर रूपनगर पहुँचा देंगे। रूपनगर के राजघराने को किसी प्रकार की उत्सुकता एवं उत्तेजना प्रकट न करके निश्चिन्त रूप से चुपचाप अपने घर बैठा रहना चाहिए; क्योंकि हाड़ा तलवार बिना किसी अन्य शक्ति की सहायता के इस कार्य को सम्पन्न करेगी। इसके अतिरिक्त हम किस योजना को लेकर क्षेत्र में उतरेंगे, उसके विषय में भी रूपनगर वालों को समय से पूर्व नहीं बतलाएंगे।' मुक्ति के आश्वासन को पाकर रूपनगर की जनता अत्यन्त प्रसन्न हुई और निश्चित होकर अपने काम-काज में लगी।

तीसरा परिच्छेद

राजस्थान के बहुत से पार्वत्य स्थान अत्यन्त दुर्गम और भयंकर हैं और उनमें भी सबसे अधिक बीहड़ है बनास नदी का वह विस्तीर्ण खादर जो पहाड़ों की घाटियों के बीच में मीलों तक झाड़ियों और वृक्षों से ढका हुआ पड़ा है तथा जहाँ पर भयंकर हिंसक वन्य-पशुओं का निवास है। ऐसे खादर का विशेष रूप से उल्लेखनीय भाग पड़ता है हिण्डौली के निकट-पास, जहाँ के जंगलों में मनुष्य को दिन में घुसते हुए भी भय प्रतीत होता है, अबेर-सबेर की कौन कहे ? राजस्थान की नदियाँ वर्षाकाल में तो बड़े भयंकर वेग से उमड़ कर बहती हैं, किन्तु ग्रीष्म ऋतु में गर्मी की अधिकता के कारण बिल्कुल सूख जाया करती हैं। उस समय केवल उनका जीर्ण-शीर्ण शुष्क कलेवर मात्र ही शेष रह जाता है। यही दशा इन दिनों प्रस्तुत बनास नदी की है। उसमें इस समय इस ग्रीष्म ऋतु में केवल इतना ही पानी रह गया है, जितना कि प्रायः नाले-नालियों में हुआ करता है। जल के सहारे रेतीली भूमि में झाड़ियों की कमी के कारण, जल के निकट समान्तर आवागमन का मार्ग बन गया है। मुख्य तट जो कहीं-कहीं जल की सतह से कई सौ फीट ऊँचा है ऊबड़-खाबड़ और झाड़-झंकाड़ पूर्ण होने के कारण चलने-फिरने के लिए प्रत्येक प्रकार से अनुपयुक्त है। इन सब कारणों से इस घाटी के अन्दर दिन में अन्धकार और जन-

शून्यता रहती है। इससे उसमें प्रवेश करने का विरला ही मनुष्य साहस कर सकता है प्रत्येक नहीं। रात्रि के समय में तो यह स्थल अन्धकार से ऐसा ढक जाता है कि जो हाथों-हाथ भी कुछ न सूझ सके। इधर-उधर से आने वाली जंगली जानवरों की भयंकर आवाजें भय से हृदय को कंपा कर वीर पुरुषों को भी कायर बना देने वाली होती हैं। इसी नदी की खाई सदृश जल-प्रवाह से बनी एक पगडण्डी की तरफ हम अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। अमावस्या की अर्द्ध-रात्रि का समय है। इस समय हर तरफ घटाटोप अन्धकार छा रहा है। सबसे अधिक आज की इस अमावस्या की पूर्ण तिमिरमयी रात्रि ने, जो कि विशेष रूप से चोर और वंचकों के लिए एक विभूति समझी जाती है, दृश्य को और भी अधिक भयंकर बना दिया है। ठीक ऐसे ही समय में एक बीस-पच्चीस मनुष्यों की टोली नदी के गर्भ में गुप्त रूप से छिपतें-छिपते उस दुर्ग की ओर बढ़ रही है जो कि उससे कुछ मील दूर पश्चिम की ओर सामने पहाड़ी पर दृष्टिगोचर हो रहा है। नदी दुर्ग की पिछली दीवार से सटी हुई है जो एक तरफ स्वयं दुर्ग की खाई का काम करती है और शेष तीन तरफ की खाई को जलदान करती है। इस समय नदी में पानी की कमी के कारण खाई भी सूखी पड़ी है। इसी खाई को लक्ष्य बना कर यह टोली आगे बढ़ रही है। टोली का नायक सबसे आगे-आगे इस निर्भीकता से चल रहा है, मानो, यह भूमि उसकी चिर-परिचित हो। शेष सब मनुष्य बिना किसी प्रकार का शब्द किये धीरे-धीरे उसका अनुकरण करते हुए बढ़े चले जा रहे हैं। दुर्ग की दीवार के निकट पहुँच कर नायक रुक गया और अपने साथियों को ऊपर तटवर्त्ती निकट की झाड़ी में बैठने का आदेश दे आप स्वयं इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगा मानो किसी व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहा हो। इतने ही में एक धीमी-धीमी सीटी की आवाज़ सुनाई दी। उस आवाज़ पर प्रस्तुत टोली-नायक ने भी सीटी बजाई। इस सीटी की

आवाज़ को सुनकर उस पक्के कुएँ की शिला का एक पत्थर धम से नीचे की तरफ को सरक गया जो दुर्ग की दीवार से दस-पन्द्रह हाथ दूर नदी के तट से सटा हुआ उस स्थान पर खड़ा है, जहाँ से नदी के पानी की धारा खाई से पृथक् होकर आगे को बहती है। पत्थर के नीचे की ओर सरकते ही उस गोलाकार पक्के घेरे में एक तीन हाथ चौड़ा और पांच हाथ लम्बा खिड़की के सदृश द्वार खुल गया जिसमें से एक व्यक्ति धीरे-धीरे ऊपर की ओर आता दीख पड़ने लगा। टोली नायक बड़ी तेज़ी से बढ़कर उस खुले हुए द्वार के निकट पहुँच गया और मन्द स्वर में पुकारने लगा 'चमेली, क्या कार्य ठीक है ?'

'हाँ श्रीमान्, कार्य बिल्कुल ठीक है। तीन-चार मनुष्यों को लेकर मेरे साथ-साथ शीघ्र आ जाइये। देर करने से कार्य बिगड़ सकता है।' इतना सुनते ही टोली नायक ने एक विचित्र ढंग की सीटी बजाई, जिस पर झाड़ी में छिपे हुये व्यक्ति तत्काल उनके निकट आकर खड़े हो गये। नायक ने उनको निकट पाकर आदेश दिया कि 'तुम लोगों में से पांच व्यक्ति हमारे पीछे इस कूप के अन्दर चले आयेंगे; शेष एक-एक, दो-दो हाथ के अन्तर से इस प्रकार छिप जायेंगे, कि दुर्ग की दीवार पर से अथवा इधर-उधर से हमको देखकर यहाँ होने वाली घटना का कोई आभास प्राप्त न कर सके।' सैनिकों ने 'बहुत अच्छा' कहा और सब अपने-अपने कार्य में निमग्न हो गये। पाँच व्यक्ति तो नायक महोदय के पीछे-पीछे उस कूप-द्वार के अन्दर घुस गये जो अभी खुला है और शेष आदेशानुसार बिखर कर नदी के खादर में छिप गये हैं। पाठक ! यह कूपद्वार और कुछ नहीं, दुर्ग के अन्दर जाने के लिए एक गुप्त सुरंग है। सम्भवतः गढ़ के बनाने वाले उसके स्वामी ने नदी स्नान के वास्ते अथवा जल आदि नदी से मँगावे के लिये उक्त सुरंग का निर्माण कराया होगा। जिस खिड़की के खुलने पर अभी-अभी नायक और उसके पाँच साथी उसमें घुसे हैं, वहाँ से नीचे उतरने की

सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिन पर शनैः शनैः सब लोग बिना कुछ कहे-सुने पाँच-छः गज़ नीचे उतर गये हैं। अब सामने साफ एक दहलीज दृष्टिगोचर हो रही है। दहलीज़ में मन्द-मन्द प्रकाश हो रहा है। पाठक ! अब हमको उस व्यक्ति की ओर ध्यान देना चाहिये, जिसको नायक ने 'चमेली' के नाम से पुकारा है। यह स्त्री देखने में एक अत्यन्त सुन्दर और चतुर बीस-बाईस वर्ष की आयु की अत्यन्त चंचला और फुर्तीली युवती प्रतीत होती है।

सम्भवतः यह इस टोली-नायक की कोई जासूस है, जिसने एक योगिन का वेश धारण कर नायक की किसी विशेष कार्य-सिद्धि के वास्ते शत्रु के दुर्ग में प्रवेश किया है। पाठक ! अधिक उत्सुक न हों, इसका सारा रहस्य अभी खुला जाता है। अब यह चमेली नामक युवती योगिन क्या करती है उस पर दृष्टिपात कीजिये। दहलीज में लगभग पचास क़दम अन्दर जाने पर चमेली रुक गई और अपने साथी टोली-नायक को वहीं खड़े रहने का संकेत करके, आप लगभग सौ क़दम और उसी दहलीज में बढ़ गई। सामने एक दरवाज़ा उसको समाप्त करके दुर्ग में निकलता है। उस दरवाजे पर मजबूत किवाड़ लगे हुए हैं। सुरंग के द्वार को खोल कर उसमें अन्दर जाने से पूर्व ही इस युवती ने यह बाहर वाली किवाड़ें इसलिये बन्द करदी हैं ताकि दुर्ग की तरफ से कोई व्यक्ति आकर दहलीज होने वाली कार्यवाही से अवगत न हो जाय। अब उन किवाड़ों के निकट दोबारा पहुँच कर यह जानने के लिये कुन्दे को पकड़ कर उसकी फिर से जांच की है कि वह ठीक तौर से बन्द है या नहीं। उसे ठीक तरह से बन्द पाकर वह तत्काल पीछे आ गई और अपनी फितूही की जेब से एक चाबियों का गुच्छा निकाल लिया है जिसमें दुर्ग की सारी चाबियाँ हैं। यह चाबियों का गुच्छा उसके हाथ किस प्रकार से लगा है यह रहस्य आगे खुलेगा। अब यह देखना चाहिये कि यह योगिन करती क्या है ? हाँ, तो चाबियों का गुच्छा लेकर और उनमें से एक चाब छांट कर

इसने एक दरवाजे के किवाड़ खोल दिये जो कि प्रस्तुत दहलीज में से खुलते हैं। उस द्वार के खुलते ही एक तहखाना दृष्टिगोचर होने लगा है जिसमें दो व्यक्ति बन्द पड़े हैं। पाठक ! पहचानिये, इस तहखाने में यह बन्दी-जन अन्य कोई नहीं केवल रूपनगर के महाराज और महारानी हैं। तहखाने के द्वार को आज एकाएक रात्रि के समय खुलने और एक स्त्री के साथ-साथ पाँच-छ: अज्ञात व्यक्तियों को प्रवेश करते देखकर, वे भय से काँप कर आश्चर्यचकित हो कुछ कहने को तत्पर हो गये। तभी चमेली ने तत्काल उंगली को मुंह पर रखकर धीरे से कहा, 'चुप, चुप, शत्रु नहीं मित्र हैं। हम आपको बन्धन-मुक्त करने आये हैं। दोनों चुपचाप हमारे साथ-साथ चले आइये।' रूपनगर के महाराज और महारानी ने इतना सुनकर उस समय बिना कोई शब्द मुँह से निकाले आगन्तुकों का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। तहखाने से निकलकर अब सब लोग दहलीज में आ गये। दहलीज में दुबारा लौटकर चमेली फिर एक मिनट खड़ी होकर कान लगाकर यह जानने की चेष्टा करने लगी कि दुर्ग में से हम लोगों की कार्यविधि को किसी ने देखा तो नहीं है एवं दुर्ग में कोई व्यक्ति जाग तो नहीं रहा है। उसे यह जानकर अत्यन्त हर्ष एवं सन्तोष हुआ कि उसका कार्य बड़ी उत्तमता के साथ सम्पन्न होता जा रहा है। कर्त्तव्य का एक बहुत बड़ा भाग सफलतापूर्वक समाप्त हो चुका है पर किसी को अभी तक कानोकान खबर नहीं है। सब लोग दुर्ग में कुम्भकर्ण की निद्रा में पड़े सो रहे हैं। दुर्ग में हर तरफ सन्नाटा छाया हुआ है। सदर फाटक को छोड़कर जहाँ पर उसके अन्दर से बन्द हो जाने पर भी कोई पहरेदार शायद जाग रहा हो, उसमें अन्यत्र कहीं कोई चिड़ी के चौंकने का शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता। किसी ने अमावस्या की सतर्कता पर भी विचार नहीं किया कि इसके अन्दर क्या कुछ हो सकता है। अस्तु, अब चमेली टोली-नायक के निकट आकर कहने लगी—

"अब मैं इस तहखाने का कुन्दा खोलती हूँ, आप लोग सजग एवं

सचेत रहें। इस दुर्ग का स्वामी और आपका शत्रु, पिण्डारियों का सेनानी शेरेजंग मैंने इस पिंजड़े में बन्द कर दिया है। यद्यपि मैंने उसको काफ़ी से अधिक शराब पिलाकर बेहोश कर रक्खा है, किन्तु फिर भी आप लोगों को बड़ी फुर्ती और चतुरता से कार्य करने की आवश्यकता है, क्योंकि प्रथम तो वह सबल तथा शक्ति-सम्पन्न शत्रु है और दूसरे वह अपने ही स्थान में है; यदि कहीं हम लोग अपने कर्त्तव्य में तनिक भी भूल कर गये तो फिर खैर नहीं है। इस पर नायक ने चमेली के सर पर हाथ फेर कर कहा 'शाबाश चमेली! अब समझे तुम्हारे चातुर्य्य को। सम्भवतः तुम आज ही अपने मित्रों के बन्धन छुड़ाने के साथ-साथ शत्रु को बन्दी बनाने की व्यवस्था भी कर चुकी हो। तुम बड़ी अच्छी और बुद्धिमान् हो। खैर, कोई चिन्ता नहीं, तुम कुन्दा खोलो। अब हम परिस्थिति को संभाल लेंगे।' इतना सुनते ही चमेली ने दूसरे तहखाने का भी कुन्दा खोल दिया। कुन्दे के खुलते ही सब लोग तहखाने में घुस पड़े। वहाँ पहुँच कर क्या देखते हैं कि तहखाने में मन्द-मन्द शमादान जल रहा है। एक गद्दे पर मसनद के सहारे शेरेजंग पड़ा खुर्राटे ले रहा है। उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध की लपटें उठ रही हैं। एक निकट की दरी पर इकतारा पड़ा है। शायद शेरेजंग के मनोरंजनार्थ बजाते-बजाते योगिन इसको छोड़कर कहीं चली गई है। टोली के अन्दर पहुँचने की आहट से उसकी झपकी टूटी और उसने आँखें फाड़ कर परिस्थिति समझने के लिये इधर-उधर देखा। संभवतः वह यही निश्चय नहीं कर पा रहा है कि वह स्वप्न है अथवा जाग्रत अवस्था में यह सब दृश्य देख रहा है और यह अज्ञात व्यक्ति योगिन के साथ मित्र हैं या शत्रु। इसी समय टोली-नायक ने निकट पहुँच कर उसके मुँह को हथेली से इतनी कड़ाई से दाब लिया कि उसका मुँह खुलना असंभव हो गया। साथियों ने उसी समय उसके हाथ-पैर पकड़ कर मुश्कें कस दीं। इसके उपरान्त नायक ने उसके मुँह से अपनी हथेली हटाकर उसमें कपड़ा ठूँस दिया और ऊपर से पट्टी बाँध
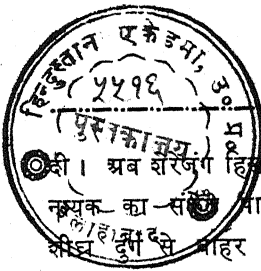
दी। अब शेरजंग हिलने या बोलने के लिये बिल्कुल असमर्थ हो गया। नायक का संकेत पाकर साथियों ने उसे उठा लिया और सब लोग शीघ्र दुर्ग से बाहर होने के लिये सुरंग की ओर को बढ़ चले। कमरे से बाहर निकलते हुए चमेली ने शमादान बुझा दिया। अतः सारी दहलीज में अन्धकार छा गया। इस सघन अन्धकार में सब लोग टटोल-टटोल कर धीरे-धीरे शान्ति-पूर्वक उस दहलीज से बाहर की ओर बढ़ने लगे। नायक और चमेली रूपनगर महाराज और महारानी की सहायता करने लगे। अन्य साथी शेरेजंग को घसीट कर ले चलने लगे। अन्त में अन्धकार को चीरते हुए बड़ी कठिनाई के साथ सुरंग पार करके सब लोग बाहर आ गये। बाहर आकर नायक ने फिर धीमी धीमी सीटी बजाई जैसे उस कार्य समाप्ति की सूचना साथियों के वास्ते विजय संदेश हो। सीटी के शब्द को सुनकर सब लोग वहाँ पर एकत्रित हो गये और नंगी तलवार के साथ महाराज, महारानी और बन्दी की रक्षा करते हुये उसी नदी-गर्भ वाली पगडण्डी द्वारा जिससे कि वे लोग आये थे, लौट कर जाने लगे। इस समय कार्य की सफलता-पूर्वक सम्पन्नता के कारण सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं। किन्तु अनौचित्य का विचार कर अपनी प्रसन्नता को कोई शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता है। सब लोग लोहयंत्र के समान बिना किसी प्रकार के शब्द किये चुपचाप चले जा रहे हैं। लगभग तीन मील तक ये लोग यों ही नदी के अन्दर चलते रहे और एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ से न किला दिखाई देता है और न उसके अन्दर की आवाज ही सुनाई देती है। अब टोली-नायक ने मुँह खोला और कहा 'भाई महासिंह, महाराज और महारानी पैदल यात्रा करते हुए थक गये होंगे। अब हम ऐसे स्थान पर आ गये हैं जहाँ शत्रु हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। यहाँ से बून्दी के वास्ते मार्ग भी सीधा और साफ है। अतः घोड़ों को यहीं ले आओ। अपने महाराज को महाराज और महारानी रूपनगर

की सकुशल मुक्ति और शत्रु के बन्दी हो जाने का शुभ समाचार भी सुना देना और वाहनादि को प्रस्थानार्थ तैयार कराते आना। इस समय हमारा निश्चय यही है कि इन्द्रगढ़ पहुँच कर ही दम लें। यात्रा के लिए यह ठंडक का समय भी अच्छा है।'

'बहुत अच्छा!' कहकर उसी टोली में से एक दूसरे व्यक्ति निकले और तेज़ी के साथ आगे बढ़ गये। टोली के शेष व्यक्ति वहीं ठहर कर घोड़ों के आने की प्रतीक्षा करने लगे। नायक ने महाराज रूपनगर को सम्बोधन करके कहा, 'महाराज! घोड़े हमने इसलिए क़िले से काफी दूर छोड़ दिये क्योंकि उनकी आहट पाकर शत्रु सजग हो जाते। दूसरे यह नदी मार्ग जिससे कि दुर्ग तक पहुँचना तै था घोड़े ले जाने के अनुकूल भी नहीं है। वहाँ घोड़ों की कोई ज़रूरत थी भी नहीं।"

रूपनगर महाराज अभी तक यह ही नहीं जान पाये हैं कि उनको मुक्ति प्रदान करने वाले सज्जन कौन हैं और कहाँ के हैं तथा किस प्रयोजनवश उन्हें मुक्त करने आये हैं? वे बून्दी आदि का नाम सुनकर कुछ अनुमान लगाने में निमग्न होने के कारण शिष्टाचार के नाते 'हाँ, हाँ' करके चुप हो गए। नायक महोदय का भी अभी अधिक वार्ता करने का विचार नहीं था। अतः वे भी चुप हो गए और शेरेजंग के मुँह की पट्टी खोलने लगे। इसी समय महासिंह भी घोड़ों को साथ लेकर आ गए। वे अपने घोड़े पर सवार होकर अन्य पाँच घोड़ों को सईसों द्वारा लिवाकर लाए हैं। घोड़ों के आ जाने पर एक घोड़े पर महाराज और महारानी रूपनगर को सवार कराया गया। एक पर स्वयं टोली-नायक सवार हुए और एक पर चमेली योगिन। अन्तिम पाँचवें घोड़े पर शेरेजंग को लादकर ले चले। मार्ग में शेष सैनिक और हाथी-घोड़े वाहन आदि सहित बूँदीनरेश मिल गए। नायक ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने नायक को गले लगाकर कहा, 'भाई मौकमसिंहजी! आपकी बुद्धि, युक्ति, साहस और शौर्य निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।' नायक महोदय ने 'यह

सब आपके ही चरणों की कृपा है' कहकर उन्हें अधिक वार्तालाप का समय न दे, कूँच आरम्भ कर दिया। कुछ समय तक यह वीर मण्डली यात्रा में संलग्न रह, इन्द्रगढ़ पहुँची। सबने अपने शस्त्रास्त्र खोल तथा वस्त्रादि उतारकर नित्यकर्म से छुट्टी पाई। भोजन-विश्राम के पश्चात् बूँदी-नरेश छत्रसालजी ने इन्द्रगढ़ में ही एक सभा की। सब लोग सभा में उपस्थित हुए। महाराज और महारानी रूपनगर को भी उसमें ससम्मान उचित आसन दिये गए। उसी समय बन्दी शेरेजंग को उपस्थित किया गया। उससे पूछे जाने पर अपने बयान में उसने कहा कि वह मानपुरा का रहने वाला मुन्ना मेव है, जो एक डाकू से बढ़ते-बढ़ते प्रबल दलपति हो गया है और पहाड़ों में रहकर बड़े-बड़े कारवाँ और रईसों को लूटा करता है। इस समय उस पर मुग़ल सूबेदार कासिम खाँ की दया का हाथ है। अतः उन्होंने इसे अलीगढ़ का दुर्गपति भी बना दिया है। उन्हीं की आज्ञा से इसने रूपनगर-नरेश की यात्रा-मण्डली को लूटा है और राजकुमारियों को फिरौती रूप में लेने की धमकी दी है। इसके पश्चात् बूँदी की प्रसिद्ध वेश्या चमेली जान ने अपने बयान में बताया कि किस प्रकार अपने हितैषी इन्द्रगढ़ नरेश मौकमसिंह जी के आग्रह पर वह योगिन का रूप धारण कर शेरेजंग के दुर्ग में पहुँची। लोगों के हस्त-सामुद्रिक से जीवनफल बताकर उनकी मान और प्रशंसा की पात्रा बनी। यहाँ तक कि शेरेजंग तक भी उसकी पहुँच हो गई। शेरेजंग उससे ऐसा प्रभावित हुआ कि तहखाने में उसके साथ रात्रि को गाना सुनने पर तत्पर हो गया। चमेली ने सारा भेद लेकर मौकमसिंह जी को बुला लिया और फिर किस चतुराई से महाराज और महारानी को छुड़ाया तथा शेरेजंग को बन्दी बनवाया, वह पाठक जान ही चुके हैं। महाराज ने उसके कार्य की बड़ी सराहना की और उसे बहुत-सा धन इनाम में देकर विदा किया।

चौथा परिच्छेद

अजमेर से बूँदी जाने के लिये विगत काल में संकीर्ण या शुष्क जन-पथ को छोड़कर कहीं ऐसे विशाल मार्ग या सड़कों का ताँता नहीं था जैसा आजकल दिखाई दे रहा है। उस समय भूमि भी आज के समान समतल कर कृषि-उपयोगी नहीं बनाई गई थी। राजस्थान का बहुत-सा भू-भाग यों ही झाड़-झंकाड़ों से ढका हुआ ऊबड़-खाबड़ पड़ा हुआ था और ऐसे ही एक भाग में होकर उक्त जन-पथ जाता था। कहीं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े थे तो कहीं कुछ थोड़ा-सा मैदान अथवा विषम खाई-खल्लर, जिनके अन्दर प्रवेश करके पार हो जाना बड़े साहस का कार्य था। इस प्रकार का प्रयास करने वाले भी थोड़े ही वीर-हृदय पुरुष होते थे। कारण कि उन बीहड़ घने जंगलों में शेर-चीते आदि हिंसक वन्य-पशु और चोर-डाकू छिपे रहते थे जो अपने आखेट की जरा सी भी गन्ध पाकर उस पर आक्रमण कर देते थे। शासन-सूत्र उस अस्थिर काल में ऐसे ढीले पड़े थे कि कौन कहाँ का था और कहाँ लुट-पिट गया या मर-खप गया, इसकी कोई खबर तक लेने वाला नहीं था। मनुष्यों के प्राणों का मूल्य बहुत थोड़ा था। शासन की इकाइयों में या तो अत्यन्त छोटे-छोटे राज्य अपनी अत्यन्त संकीर्ण विचारधारा को लिए हुए जन-रक्षा के विचार से अपर्याप्त होते थे या होते थे बड़े साम्राज्य, जिनका कर्तव्य केवल छोटी इकाइयों से उनके साथ लड़-भिड़कर तथा अपने अधीन

करके केवल राज-कर मात्र ही वसूल करना होता था। सर्वसाधारण जनता की सुख, सुविधा, शान्ति, समृद्धि और संरक्षण का ध्यान किसी को भी नहीं होता था। भिन्न-भिन्न राज्यों में जनता के दृष्टिकोण को लेकर राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक किसी प्रकार के बन्धन-सूत्र नहीं थे।

उसी मध्यकाल की एक संध्या के समय प्रस्तुत संकीर्ण जन-पथ पर एक विशाल वीरवाहिनी यात्रा में संलग्न दृष्टिगोचर हो रही है। इस वीरवाहिनी के संख्याधिक्य से अनुमान होता है कि सम्भवत: वह किसी राज्य के ध्वंस करने के लिये प्रलय की सूचना बनकर आ रही है। बनास नदी को पार करके वह बूँदी राज्य के अन्दर घुसती चली जा रही है। मण्डलगढ़ को पीछे छोड़ती हुई इस समय वह देवली से सटी हुई उस पर्वत-शृङ्खला के निकट पहुँच गई है, जो कि बूँदी राज्य की पीठ की रीढ़ गिनी जाती है। पर्वत की तलहटी में जिस स्थान पर इस विशाल सिंहवाहिनी ने पड़ाव डाला है, वह एक छोटा-सा चौरस मैदान है। अनेक सुविधाओं के विचार से इस दल के नायक ने उसी स्थान को निवासोपयोगी निश्चय किया है। अध्यक्ष की आज्ञा से ऊँटों से सामान उतार लिया गया है और तम्बू-डेरे तानकर उस जन-शून्य मैदान को एक जन-निवास की बस्ती बना दिया गया है। कहीं लोग अपने ऊँट, घोड़े आदि के दाने-चारे की व्यवस्था में निमग्न हैं तो कहीं कोई अपने और अपने साथियों के भोजन आदि की व्यवस्था कर रहे हैं। इन तम्बुओं के मध्य में एक बड़ा पण्डाल है, जो कि हर प्रकार के राजसी ठाठ-बाट और तेज प्रकाश से युक्त है। उसमें लगे झाड़-फ़ानूस और मखमली क़नातों से उद्भासित होता है कि उस वाहिनी के प्रधान का शिविर यही है, जो और सब की अपेक्षा अधिक महत्व रखता है। इस पण्डाल में एक ऊँचे मञ्च पर गिलम-गलीचे और तोसक-तकिए का आश्रय लिये एक अधेड़ व्यक्ति बैठा है। इसके निकट चार-पाँच व्यक्ति

और बैठे हैं, जो देखने से उसके सहायक सेनापति जैसे मालूम होते हैं। अध्यक्ष ने सब पर एक दृष्टि डालने के पश्चात् एक नवयुवक को सम्बोधन कर कहना आरम्भ किया—"बुन्दा बेटा! मैं तुम्हें अपने दिल के टुकड़े इस सहादत से भी ज्यादा प्यारा समझता हूँ। तुम्हारे वालिद का जितना ख्याल तुम्हें है उससे कहीं ज्यादा मुझे है, जिसका यह सबूत है कि शाहंशाह आलम की बिना इजाजत हासिल किए ही, मैं अपने प्यारे दोस्त शेरेजंग को रिहा कराने के वास्ते, एक बड़े बहादुर और नामवर दुश्मन से लोहा लेने के ख्याल से उस पर फौज लेकर चढ़ आया हूँ।"

"हम लोग आपके इस अहसान के ताउम्र शुक्रगुज़ार रहेंगे हुजूर।"

"हम समझते हैं कि अपना सदर मुकाम इसी जगह रख कर दुश्मन पर चुटपुट हमले करें, क्योंकि यह जगह खान-पान के ख्याल से बड़े आराम की है।"

"हुजूर का ख्याल ठीक है। पड़ाव को यहीं रख कर लड़ना फायदामन्द है।"

"कल मरदान खाँ को एक चौथाई फौज देकर मंडलगढ़ की तरफ से दुश्मन की रियासत में घुसाया जाय, दरिया खां को पूर्व की ओर से और हम बुन्दा को लेकर यहीं से कार्रवाही शुरू करें, क्यों मरदान खाँ ?"

"जनाब ने बिल्कुल ठीक सोचा है। मुझे भी यह तरकीब दुरुस्त जँचती है।"

यह पिछला वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि कहीं दूर जंगल से किसी चीत्कार की ध्वनि सुनाई दी। चीत्कार के शब्द थे: 'चलो-चलो, बचाओ-बचाओ, दुहाई कासिम खाँ सरकार की।' इन शब्दों की तीन बार पुनरावृत्ति होकर वह चीत्कार आकाश में विलीन हो गई। आवाज़ ऐसी बारीक थी, जिससे यह स्पष्ट रूप से किसी स्त्री-कण्ठ से निकली मालूम

देती थी, जैसे कहीं निकट से ही आई थी। चीत्कार को सुनकर सब के सब एक साथ चौकन्ने हो गये।

पाठक! अब यहाँ पर इस विशाल सिंहवाहिनी और उसके अध्यक्ष का परिचय देना उचित है। यह सेना अजमेर के सूबेदार कासिम खाँ की है। कासिम खाँ शाहजहाँ के प्रमुख मन्सबदारों में से एक है और है उसका परम विश्वास-पात्र स्वजन। तभी उसे अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रान्त राजस्थान में सूबेदार बनाकर रक्खा है। उसने अपनी इस विशाल सेना को लेकर अपने मित्र शेरेजंग का बंधन मुक्त करने का बीड़ा खाकर बूँदी-नरेश वीर शिरोमणि छत्रसाल हाड़ा पर आक्रमण किया है और प्रस्तुत स्थान पर, जिसका वर्णन हम पाठकों के सम्मुख रख चुके हैं, पड़ाव डाला है। इस समय कासिम खाँ अपने डेरे में बैठा अपने सरदार मरदान खाँ, दरिया खाँ, शेरेजंग अर्थात् मुन्ना मेव के पुत्र बुन्दा मेव और अपने पुत्र सहादत खाँ के साथ उक्त प्रकार के वार्तालाप में निमग्न हो रहा था कि उस वार्तालाप का तांता किसी दुखित की चीत्कार ने तोड़कर उनके ध्यान को एक नये विषय पर ही लगा दिया। कासिम खाँ ने कहा, 'दरिया खाँ! तुम फौरन एक हज़ार सिपाही लेकर इस दुखिया सख्स का पता लगाओ और मुमकिन हो तो जालिम, मजलूम दोनों फरीकों को पकड़कर हमारे सामने हाज़िर करो। जल्दी जाओ, देर का काम नहीं।' दरिया खाँ सैनिक सलाम करके उठा और अनमने मन से जाने के वास्ते तैयार हुआ जैसा कि उसकी आकृति से प्रतीत होता है। इसका कारण यह था कि इस असमय में धक्के खाना उसने व्यर्थ का सिर-दर्द समझा; किन्तु विवश है अपने से ऊँचे अधिकारी की आज्ञा के कारण है। ऐसी दशा में वह कर भी क्या सकता है। अतः शस्त्रास्त्र तथा रण-वस्त्रों से भले प्रकार सज्जित होकर तथा एक सहस्र योद्धाओं को साथ लेकर घटनास्थल की ओर बढ़ा। जंगल में चारों ओर घटाटोपान्धकार छाया हुआ है।

आकाश काले-काले बादलों से घिरा हुआ है। ऐसी भयंकर रात्रि के समय झाड़-झंकाड़ से पूर्ण इस अजनबी ऊबड़-खाबड़ बीहड़ प्रदेश में चलना-फिरना अथवा अनुगमन करना अत्यन्त कठिन है और इस पर भी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अन्धेरे में मार्ग का कहीं पता नहीं लग रहा है। दरिया खाँ सदलबल उसी स्थान की ओर बढ़ने लगा जिधर से वह चीत्कार की ध्वनि सुनने में आई है। बड़ी कठिनाई के साथ वह उस खाई को पार कर उस स्थान पर पहुँचा जहां ध्वनि खाई के दूसरी तरफ से आई जान पड़ी। यह खाई बहुत गहरी और अत्यन्त भयानक है। खैर, जैसे-तैसे उसे पार कर वह अपने दल सहित वहाँ पहुँचा।

वांछित स्थान पर पहुँच जाने के पश्चात् सरदार दरिया खाँ को ऐसा मालूम दिया कि कहीं आगे की तरफ कुछ लोग लड़-झगड़ रहे हैं जिनकी आवाज़ उस जगह साफ़ सुनाई दे रही है। दरियाखाँ ने अपने सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी जिसका तुरन्त पालन हुआ। किन्तु ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये, त्यों ही त्यों, वह वार्ता ध्वनि आगे बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि वे उसका पता लगाने में अपने डेरे से दो मील दूर निकल आये। पर किसी को न पाकर अब निराश हो पीछे लौटने का विचार ही दिल में लाये थे कि वही चीत्कार ध्वनि उनसे लगभग एक फर्लांग की दूरी पर फिर सुनाई दी। दरिया खाँ ने अब की बार फिर साहस करके उसके निकट पहुँचने की चेष्टा की और उसने इस अन्तिम बार के अपने प्रयत्न में कुछ सफलता भी प्राप्त की। इस भयानक रात्रि में चीत्कार करने वाले जिस व्यक्ति का पता लगाने के लिये वे डेरे से चले थे उसे अन्ततः पा ही लिया। वह एक मुस्लिम युवती है और एक वृक्ष से बँधी हुई पड़ी है। उसके शरीर पर कई घाव भी हो रहे हैं जिन से रक्त बह कर उसके कपड़ों को इस प्रकार रंगीन कर रहा है जैसे कहीं होली खेलकर आई हो। सरदार दरियाखाँ ने उसके निकट पहुँचने पर उसे

अर्द्ध-मूर्च्छित तथा भयभीत पाया। पहले तो मुग़लों को देखकर वह बेहोश हो गई और फिर बड़ा भय तथा क्रोध प्रकट करते हुये कहने लगी 'हाय पापी राजपूतो, इस तरह तड़फा-तड़फा कर मत मारो। इससे तो बेहतर है कि मेरा एक साथ ही काम तमाम कर दो। मेरे खून का बदला सूबेदार कासिम खाँ की शमशीर जरूर लेगी।' दरिया खाँ ने जब उस स्त्री को अपने मुग़ल सरदार होने का तथा उसकी सहायता करने का विश्वास दिलाया और उसके बन्धन खोले तब कहीं उसका ढाढ़स बँधा। उसने कहा, 'मैं तहव्वर खाँ की बेगम अजीज़न हूँ और आगरे की रहने वाली हूँ। सूबेदार कासिम खाँ की बीवी हमीदा बेगम, सरदार दरिया खां की बीवी मुश्तरी बेगम और मरदान खाँ की बीवी जमीला बेगम व मुमताज की खास कनीजा मुरादन के साथ मैं अजमेर शरीफ जाने के लिये घर से निकली थी कि हमारे काफिले को बूँदी के राजपूतों ने गिरफ्तार कर लिया और हम को इज़्जत खोने पर मजबूर किया। हम लोगों के रुकावट करने पर हम को मार-मार कर अपनी ख्वाहिश पूरी करने पर ज़ोर देने लगे और राजी न होने पर कैद कर दिया। मेरी बाकी साथिन तो यहाँ से एक मील दूर एक मकान में बन्द हैं। सिर्फ़ मैं वहाँ से निकल कर भाग आई हूँ। मुझ को यहाँ कुछ राजपूत सिपाही मिले जो यह जानने की फिक्र में हुए कि मैं शाही गिरफ्तार शुदा औरतों में से तो नहीं हूँ। मैं उन्हें बताती नहीं थी इसलिये वे मुझे मार-मार कर वापिस ले जाना ही ठीक समझ खींच रहे थे। आप लोगों के आने की आहट पाकर वे लोग मुझे इस पेड़ से बाँध कर भाग गये हैं।' सरदार दरिया खाँ अपनी और सूबेदार की बीवी का नाम सुनकर क्रोध और मोह से पागल हो गया और शीघ्रातिशीघ्र उसको कष्ट से मुक्त करने के लिये छटपटाने लगा। उसने बड़ी उत्सुकता के साथ अजीज़न से पूछा, 'जिस जगह तुम कैद की गई वह कोई किला है या मामूली मकान और

दुश्मन के कितने आदमी उसकी हिफ़ाजत कर रहे हैं।'

अजीजन ने उत्तर दिया—

'जहाँ पर मेरे साथ वाली क़ैद हैं वह एक मामूली-सा मकान है, जो पहाड़ की घाटी में जंगल के अन्दर है और नज़दीक पास कोसों तक कोई बस्ती नहीं है। उसकी हिफाजत करने वाले दुश्मन के सिपाही पचास से ज्यादा नहीं है। अगर उनको वहाँ आज ही न छुड़ाया गया तो शायद कल दिन में कहीं दूसरी जगह भेज दी जायँगीं।' इस बात को सुनकर तो दरिया खाँ आपे से बाहर हो गया। अपनी पत्नी के लिये क्या कुछ नहीं किया जाता। अतः वह शीघ्र इस स्थान तक पहुँचने के लिये छटपटाने लगा और कहने लगा, 'अच्छी अजीज़न! तुम हमारे साथ-साथ चलकर हमें उस जगह ले चलो। हम उनको छुडायेंगे और काफ़िरों को उनके किये की सज़ा देंगे।' अजीज़न ने कहा, 'मैं तुम को उस जगह का पता निशान बता सकती हूँ, मगर जो ज़ुल्म मेरे ऊपर हुये हैं, उनकी याद करके मेरा कलेजा डर से काँप रहा है और उस तरफ को क़दम नहीं उठते।' दरियाख़ाँ कड़क कर बोला, 'हम काफिरों को कच्चा ही चबा लेगें। हमारे साथ जाने में किस बात का डर है? हमारी ताकत को देखो हम उन्हें किस तरह तगड़ी सजा देकर मुल्के जहन्नुम रसीद करते हैं। हमारे साथ रहने में कोई डर की बात नहीं है।' इससे कुछ आश्वस्त हो अजीज़न उनके साथ जाने के लिये राज़ी हुई।

अब तो दरियाखाँ का दल अजीज़न को आगे करके मुग़लानियों को छुड़ाने के वास्ते बड़ी तेज़ी के साथ उस स्थान की ओर बढ़ने लगा, जहाँ पर उनके बन्दीगृह में होने का पता दिया गया और जिधर वह उनको ले जा रही है। लगभग आध घण्टे की यात्रा के पश्चात् अजीज़न दरिया खां के दल को एक तंग घाटी में से होकर तथा उसे पार कराकर एक ऐसे स्थान पर ले आई है, जो भूमि की सतह से लगभग सौ फीट

सीधी खड़ी पहाड़ी पर है। यह एक ऐसा छोटा चारों ओर से घिरा हुआ मैदान है, जैसा हॉकी खेलने का होता है। सामने की तरफ उसमें एक छोटा-सा पत्थर का बना पहाड़ की एक गुफा से मिला हुआ कोठा-सा है। अजीज़न वहीं एक पत्थर पर खड़ी होकर कहने लगी 'इसी कमरे में वे सब क़ैद हैं।' इसी समय एक सीटी की आवाज़ हुई और उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह पत्थर जिस पर अजीज़न खड़ी है उसे लेकर भूमि में धँसता जा रहा है और अन्त में एक कुएँ की शक्ल में हो अजीजन को अन्दर छोड़कर तथा फिर ऊपर आकर, चबूतरा-सा बन गया है। अभी वे इस समय अपने कर्त्तव्य पर विचार कर भी नहीं पाये हैं कि दूसरी सीटी बजी और उसके साथ ही उस स्थान में से, जिस पर वे खड़े हैं, भयंकर ज्वाला की लपटें निकल कर उनको जलाने लगीं। दरियाखाँ का दल उस भयानक अग्निकाण्ड में इस प्रकार से जलने लगा, जिस प्रकार भाड़ के अन्दर चना या मटर भुनते हैं। चारों ओर हाय-तोबा, चीख पुकार का क्रन्दन हो रहा है। सम्भवतः उस स्थान पर उस दल को स्वाहा करने के लिये बारूद बिछा दी गई है और वह स्त्री धोखे से उसे समाप्त कराने के विचार से वहाँ ले आई है। सरदार दरिया खां के सैनिक, जो अग्नि की लपटों में जलते हुये ज्यों-त्यों कर जैसे ही बाहर होने के विचार से, उस कन्दरा के द्वार पर पहुँचे तो अपने बाहर निकलने के मार्ग को भी पीछे से बन्द पाया, जिसे शायद उनके आगे बढ़ जाने के पश्चात् ही ईंट-पत्थरों से अति शीघ्र बन्द किया गया है। अब तो उनको अग्नि में जल मरने के अतिरिक्त चारा ही क्या रहा। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। इसी समय पहाड़ों के ऊपर से राजपूतों के तीर और ईंट-पत्थर के प्रहार उनको अपना आखेट बनाने लगे। इस प्रकार बिना अपने पराक्रम-प्रदर्शन का अवसर पाये लगभग सब यवन सैनिक यमपुर के अतिथि होने लगे। केवल गिने-चुने मनुष्य ही इस हत्या-काण्ड की कासिमखाँ को खबर देने के लिये शेष बच

सके। वे भी घायल और अग्नि से झुलसे हुये हैं। सरदार दरियाखाँ युद्ध में समाप्त हो गये। एक सहस्र योद्धाओं में से एक चौथाई से अधिक नहीं बचे। उनमें से भी सबके सब घायल और अग्नि से जल जाने के कारण मृतप्राय हैं। जब इस कत्लेआम का समाचार सूबेदार कासिमखाँ को मिला तो वह आश्चर्य और भय से सन्न हो गया। क्रोध भी शत्रु पर अत्यधिक आया किन्तु अर्द्ध-मूर्च्छित सर्प की भाँति छटपटाने के अतिरिक्त वह और कर ही क्या सकता था, अतः मन मारकर चुपचाप बैठ गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल का सुहावना समय है जो मनुष्य क्या पशु-पक्षियों तक को आनन्द दे रहा है, किन्तु दुःखी है तो केवल एक शासक-हृदय अर्थात जब से सूबेदार कासिम खाँ ने अपने सैनिकों और सेनापतियों के भयंकर नर-वध का समाचार सुना है उसके शरीर में काटो तो खून नहीं निकलता। उसी समय से लगातार अपने बिस्तर पर पड़ा हुआ वह आह भरकर छटपटाता रहा है। दिल टूट गया है, उत्साह क्षीण हो गया है और मस्तिष्क में विकार पैदा हो गया है। इस समस्या का कोई हल सूझ ही नहीं रहा है कि इस प्रकार के छली शत्रुओं का किस प्रकार सफलता-पूर्वक निबटारा किया जाय। मरदान खाँ, सहादत खां और बून्दा मेव सभी ने सान्त्वना देने की चेष्टा की है पर किसी के आश्वासन से सन्तोष नहीं होता। कारण कि जो युक्ति तर्क-सिद्ध नहीं है, उसमें सफलता मिलनी कठिन है, क्योंकि युद्ध और व्यापार सही गणना के खेल हैं और जो व्यक्ति ठीक-ठीक गणित लगा सकता है, वही सफलता का अधिकारी है। जब बुद्धि ने उसका दिल निश्चित मार्ग पर न डाला तो वह पथभ्रष्ट होकर इधर-उधर खाई-खल्लरों में धक्के खाने लगा और ठोकर खाकर एक स्थान पर ऐसा गिरा कि फिर उठने को क्षमता ही नहीं रही। वह काफी देर तक इस तरह पड़ा-पड़ा छटपटाता रहा और स्मरण करने लगा अपने विगत जीवन की, उन घटनाओं की जो बहुत पीछे छूटकर

विस्मृति के तिमिर में विलीन होती जा रही हैं।

हताश सूबेदार की जब शत्रु की सीमा में आकर ऐसी दयनीय दशा देखी, तो सहादत खाँ से न रहा गया। उसने कहा "अब्बाजान। आप ऐसे हिम्मत क्यों हार रहे हैं। अभी हमारी खाट नहीं कट गई है। अगर एक दफा दुश्मन ने धोखे से हमें नुकसान पहुँचा ही दिया तो क्या? काठ की अनेक बार तो नहीं चढ़ा करती। अब की बार क्या करेगा? मैं अभी एक बड़ी सेना लेकर लड़ाई में जा रहा हूँ। भाई बुन्देखाँ मेरे साथी होंगे। राजपूताने की चप्पा-चप्पा भर जमीन इनकी देखी हुई है। मैं काफिरों का एक तरफ से ऐसा सफ़ाया बोलूँगा और आपकी बहादुरी में चार चाँद लगाऊँगा कि दुनियां याद रक्खेगी। आप ज़रा हुकम करें?"

"प्यारे बेटे! अभी तुम और बुन्दा बालक हो। राजपूतों की लड़ाई के फ़नों से वाक़िफ़ नहीं हो। मेरा दिल तुम्हें भेजने की इजाज़त नहीं देता।"

"शेर का फरजन्द शेर से कम नहीं होता, अब्बाजान! मैं ज़रूर मुहीम पर जाऊँगा।"

"कोई हर्ज़ नहीं है, जनाब! बालक के दिल को भी तोड़ना नहीं चाहिये। अगर हुक्म हो तो यह ख़ादिम मरदान खाँ भी छोटे भाई की हिफाजत करने के लिये इस जंग में जाने को तैयार है। मेरी मौजूदगी में इसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। लड़ाई के फ़न में मैं ग़नीम से कम होशियार नहीं हूँ।"

"हाँ! ऐसी हालत में मैं सहादत को जंग में जाने की ईजाज़त बखुशी दे सकता हूँ। खुदा इसकी उम्र बुलन्द करे! मगर अपना हिफाजत का हाथ हर वक्त इसके सिर पर रखना। तुम्हारे ही भरोसे इसे लड़ाई पर भेज रहा हूँ।"

"आप बे-फिक्र रहें, मैं हर वक्त इनके साथ रहकर जंग में इनकी हिफ़ाज़त करूँगा।"

मरदान खाँ की बातों को सुनकर सूबेदार को तसल्ली हो गई और उसने उसकी हिफाजत में दोनों युवकों को युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी। तत्काल लगभग पाँच हजार योद्धाओं की हाथी-घोड़ों आदि से युक्त-चतुरंगिनी सज गई। रण-वाद्यों के साथ उस वीर-वाहिनी ने नदी के किनारे-किनारे इस योजना को लेकर कूँच किया कि पूर्व की ओर से बूँदी पर आक्रमण कर तथा शत्रुओं में प्रलय-काण्ड उपस्थित कर, उनके किये का दंड दिया जाय। जिससे कोई आगे इस तरह की हिमाकत करने का हौसला ही न कर सके और मुग़ल शासन का वाहन निर्विघ्न चलता रहे।

सहादत खाँ की सेना सारे दिन ऊबड़-खाबड़ निर्जन झाड़-खंड के पार करने में व्यस्त रही। बड़ी कठिनाई से वह फिर नदी के निकट आई। पाठकवर्ग! यहाँ पर आपको यह सन्देह होना सम्भव है कि जब यात्रा नदी के किनारे-किनारे आरंभ हुई थी तो फिर उसको छोड़कर उसी सेना ने जंगल का मार्ग क्यों ग्रहण किया और पुनः उसी नदी के किनारे पर कैसे आ गई? इसके उत्तर में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि संशय निवारण के लिये बनास नदी के बहाव की गति पर दृष्टि डालनी चाहिये। पहले यह नदी पश्चिम से पूर्व की दिशा में बहती है। फिर सामने मार्गावरोधक पर्वत-श्रेणियों के आ जाने के कारण, यह अपना रुख बदल कर दक्षिण से उत्तर की ओर को बहना आरंभ कर देती है। इसके पश्चात् एक गोलाकार घुमाव लेकर उत्तर से दक्षिण को चल देती है और फिर अन्त में उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में बहती हुई उत्तर-दक्षिण घूमकर चम्बल में मिल जाती है। इसी दक्षिण-उत्तर और उत्तर-दक्षिण मोड़ों के कारण सेना के मार्ग से नदी का बहाव पृथक् होकर फिर निकट आ गया और समान दिशा में बहने के कारण पुनः उसे अपनी मार्ग-प्रदर्शिका बना उसके किनारे-किनारे चलना आरम्भ कर दिया। सूर्य के अस्त होने के समय यह सेना एक ऐसे स्थान पर आ गई जहाँ से बून्दी की तरफ का प्रवेश मार्ग केवल इस नदी के गर्भ में होकर

जल की धारा के किनारे-किनारे है और उसके दोनों तरफ दो पहाड़ों की श्रेणियां मीलों ऊँची सीधी खड़ी हैं। सहादत खाँ की सेना ने बून्दी की तरफ जाने के वास्ते और कोई मार्ग न देख नदी के गर्भ द्वारा ही यात्रा करनी आरम्भ कर दी और लगभग दो-तीन घण्टे तक वह इसी प्रकार चलती रही।

जिस समय यह सैन्य एक ऐसे स्थान पर पहुँची जहाँ दो ऊँचे-ऊँचे सीधे खड़े पहाड़ों के मध्य में नदी का फाट इतना तंग हो गया था कि पंक्तिबद्ध होकर पन्द्रह मनुष्य से अधिक बराबर-बराबर उसके अन्दर यात्रा नहीं कर सकते थे तो देखती क्या है कि आगे जाने का मार्ग किसी ने कुछ ही देर पहले उसके अन्दर एक दीवार बनाकर बन्द कर दिया है। अब यह कौतुक उनके लिये नया नहीं रह गया था। अतः उन्होंने तत्काल समझ लिया कि दुश्मन राजपूतों ने उनकी आगे बढ़ने की गति को रोकने के विचार से यह मार्ग ईंट और पत्थरों की एक सीधी दीवार खड़ी करके बन्द कर दिया है जिसका अपने लाभ की दृष्टि से साफ करना अनिवार्य है। यह विचार करके तथा मरदान खाँ का परामर्श लेकर सहादत खाँ ने उस दीवार को तोड़कर आगे बढ़ने का आदेश दियां। यह आज्ञा पाते ही सैनिकगण उसके तोड़ने के कार्य में संलग्न हो गये। इसी समय उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नदी का पानी बढ़ने लगा है और बढ़ते-बढ़ते वह लगभग भूमि की सतह से बीस फीट ऊँचा चढ़ गया है और सारी सेना पानी में डूबने लगी है। उन मनुष्यों और पशुओं को छोड़कर जो तैरना जानते थे शेष सब जल की धारा में विलीन हो गये।

तैरना जानने वाले मनुष्य और पशु मृत्यु के साथ संघर्ष में निमग्न हो, उसके पंजों से अपने प्राणों को बचाने के लिये हाथ-पैर मार रहे हैं। पाठक ! अचानक नदी में बाढ़ कैसे आ गई, इसके लिये आश्चर्य प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है, कारण कि प्रस्तुत स्थान से लगभग चार-

पाँच मील पश्चिम की ओर राज्य ने नदी का पानी सिंचाई के लिये प्रयोग में लेने के वास्ते एक बाँध बनाकर सारी नदी का पानी रोक लिया था। इस समय शत्रु की प्रबल वाहिनी को रोक कर उसके साथ युद्ध करने में अपने आपको असमर्थ पाकर राजपूतों ने बाँध काट दिया है, जिससे सारी घाटी पानी से भर गई है और शत्रु-सैन्य उस बाढ़ में डूबने लगी है, क्योंकि घाटी में पानी लगभग बीस फीट चढ़ गया है। उनके अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र तथा अन्य सब सामान पानी में बह गया है, जिसके बचाने की न किसी में क्षमता है और न किसी के पास इतना अवकाश। अपने-अपने प्राणों को बचाना उन्हें भी कठिन जान पड़ रहा है जो भले प्रकार तैरना जानते हैं। जो लोग तैरना नहीं जानते उनके वास्ते तो मृत्यु अनिवार्य है ही, जिसके अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है।

उक्ति प्रसिद्ध है कि गिरे में चार लातें अनायास ही लग जाया करती हैं, वही दशा इस वाहिनी की भी हुई है। नदी में बाढ़ आ जाने से तो वह अत्यन्त पीड़ित हुए ही, साथ ही पहाड़ों के ऊपर से ईंट-पत्थर, तीर और रहफ़लों की गोलियों के प्रहार भी होने लगे, जिनके आखेट होकर यवन योद्धागण निरुपाय होकर मृत्यु के घाट उतरने लगे। रात्रि के अन्धकार में यवनों की सेना को यह पता लगना भी कठिन हो गया कि शत्रुओं का दल कितना है और कहाँ है ? वे केवल इतना ही जानते हैं कि पर्वतराज क्रुद्ध होकर उन पर क़हर ढा रहा है और बना रहा है उन्हें परलोक का यात्री। पर्वत की भूखी कन्दराएँ सम्भवतः अधिक दिनों के पश्चात् पेट भर भोजन प्राप्त करके जन-रव की प्रति-ध्वनि के द्वारा अपना हार्दिक हर्ष प्रकट कर रही हैं। यवन-सेना में हाहाकार मच रहा है। 'हाय-हाय, मरे-मरे, बचाओ-बचाओ' आदि का करुण-क्रन्दन नीरव रात्रि में पहाड़ों को प्रतिध्वनित कर आकाश में पहुँच कर निरुत्तर रूप से समाप्त हो रहा है। यहीं तक नहीं, नदी के

तंग पार्वत्य तट पर पहुँचने पर वे अपने शत्रुओं की तलवार के भी आखेट होने लगे हैं। इस प्रकार शत्रुपक्ष के लिये, सब कहीं महाप्रलय ही अपना भयानक मुँह खोलकर उनका स्वागत-आह्वान करती दीख पड़ती है। इसी समय एक तीर बुन्दा मेव के लगा, जिसके आघात से थोड़ी देर तक तड़फड़ाकर अन्त में वह वहीं समाप्त हो गया। मरदान खाँ और सहादत खाँ इस बुरी तरह से घायल हुए कि उनके प्राण बचने भी कठिन जान पड़ने लगे। वे सब के सब आत्म-समर्पण के लिये तैयार हो गए, क्योंकि ऐसे भयानक समय में आत्म-समर्पण के अतिरिक्त और होता भी क्या? जबकि उनके लिये हर तरफ घोर संकट कमर बाँधे खड़ा हो। किन्तु इस प्रकार के संकट-ग्रस्त व्यक्तियों का क्या आत्म-समर्पण? उनके पास न तो शस्त्रास्त्र हैं, जिनसे लड़ रहे हों और जिन्हें रखकर अपना मनोभाव प्रकट कर सकें और न पताकाएं ही हैं, जिनको झुकाकर सफेद झण्डे खड़े किये जावें। केवल दीन वाणी के और उनके पास निजत्व सम्बन्धी कोई चिह्न भी तो नहीं है। अतः वे बड़े जोर-जोर से तोबा-तोबा, दुहाई-दुहाई पुकारकर और बचाओ-बचाओ, हम तुम्हारी कपिला गाय हैं, आदि कहकर अपनी आत्म-सम्पर्क पराजय की घोषणा कर रहे हैं। किन्तु मानव-प्रकोप के साथ-साथ दैवी प्रकोप के मिल जाने के कारण उनकी मृत्यु का क्रम उसी प्रकार जारी है। इसी समय एक घटना यह हुई कि मरदान खाँ, जिसके सहादत खाँ की अपेक्षा कुछ कम घाव आये थे, दिल और दिमाग के सही हालत में होने के कारण हिताहित को ध्यान में रखकर प्राण-रक्षा के विचार से अधिक घायल सहादत खाँ को तट की ओर खींच लाया।

राजपूतों को मौका मिल गया और उन्होंने उन दोनों को बन्दी बना लिया। अब मुग़लों की पराजय अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी। अतः उन्होंने सेनापतियों की समाप्ति पर वित्तभोगी सैनिकों के वध को व्यर्थ समझ शस्त्रास्त्र वर्षा बन्द कर दी और नदी का अगला बाँध खोल दिया।

बाँध के पानी के आगे नदी में निकल जाने से शेष सैनिकों के प्राण बच गए। इसी समय एकाएक दो सौ घुड़सवार सैनिकों को लिये एक राजपूत सरदार उनके निकट आया और उनके अस्त्र-शस्त्र और रण-वस्त्र लेकर उनको आज्ञा दी कि वे जाकर अपने सूबेदार को आज के युद्ध के परिणाम का समाचार पहुँचा दें। यह राजपूत सरदार बूँदी-नरेश छत्रसाल के भाई मौकमसिंह ही हैं।

छठा परिच्छेद

प्रातःकाल का समय है। अपने नित्य के कार्यों से छुट्टी पाकर सूबेदार कासिम खाँ अपने दीवानी डेरे में पधारे हैं। सूबेदार साहब का यह नियम है कि प्रातःकाल अपने कामों से निबटकर अपनी सेना के सब सैनिकों पर, उनके सुख-दुख की बात पूछने के विचार से, एक दृष्टि डाल लिया करते हैं और फिर दीवानी डेरे में बैठकर सिपहसालारों की सलामें लिया करते हैं। आज जबकि वे सेनानियों की सलामें लेनें को तत्पर हुये तभी सरदार हाथी राजा एक ज्योतिषी को पकड़ लाया और उसे दरबार में उपस्थित करके उसके ज्योतिष के हुनर की तारीफ़ करने लगा। सूबेदार ने भी उत्सुक हो उससे अपने पुत्र के युद्ध का परिणाम पूछा। ज्योतिषी ने तात्कालिक कुण्डली बनाकर कहा, 'सरकार, आपका पुत्र सहादत खाँ बड़ा वीर है। उसके लिये मामूली हार-जीत क्या वह तो दुश्मन के सामने पानी पर तैर सकता है और रही आपकी लड़ाई की बात, सो आप अनेक जीतों के साथ कल कुदरत के दुर्ग में बैठे होंगे।' इस बात को सुनकर कासिम खाँ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उचित पुरस्कार देकर उसे विदा किया। इस भविष्यवाणी को सुनकर सब के मुरझाये हुये मुख हर्ष से खिल उठे। हर्ष की वेला में प्रायः मनोरंजन सूझा करता है अतः सूबेदार कासिम खाँ का भी ध्यान उस ओर आकृष्ट हुये बिना न रह सका और उसने तत्काल नर्तकी को बुलाकर नृत्य का आयोजन किया। व्यवस्थानुसार नृत्य-कार्य आरम्भ हो गया। तबला, सरंगी, खड़ताल, मजीरे और नक्कारे आदि

बाजे बजने लगे और 'गजल', 'ठुमरी' 'बहरेतबील' आदि गायन गगन में गूँजने लगे। साँमरी जान के संगीत की स्वरलहरी क्या! मानो कोयल की कूक है, जिसे सुनकर मानवी मन में हूक-सी उठने लगती है। नृत्य का तो कहना ही क्या ? जिस समय वह किसी राग को उठाकर कहरवे का नाच करती है तो उपस्थित जनता में तहलका मच जाता है। साँमरी ने गाने-नाचने में नाम पा रक्खा है और वह अजमेर की ऐसी विख्यात नर्तकी है कि राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त इतर वर्ग तो उसको इस काम के लिये बुला ही नहीं सकता। वही साँमरीजान आज सूबेदार कासिम खाँ की सभा में समा जमा रही है। सब लोग उसकी कला पर झूम-झूमकर उसकी प्रशंसा के कुलाबे बाँध रहे हैं और दे रहे हैं प्रसन्न होकर उसकी प्रत्येक ठुमकी पर तगड़े पुरस्कार। सभा के नियमानुसार यदि एक रुपया कोई इतर वर्ग देता है तो कम से कम दो रुपये सूबेदार महोदय को देने पड़ते हैं। अतः भाग्यवान् नर्तकी को एक साथ तीन रुपये पल्ले पड़ जाते हैं। इस प्रकार यों कहिये कि सब का समय प्रसन्नता-पूर्वक व्यतीत हो रहा है।

इस प्रकार पी-खाकर जब सब लोगों ने नाच-रंग में निमग्न हो अपने आपको खुशियों के आकाश में पहुँचा दिया तो एकाएक कमालखाँ ने सभा में प्रवेश करके सूबेदार साहब को सलाम किया। सूबेदार ने उसकी खस्ता हालत देखकर उससे सहादत खाँ और उसकी सेना का हाल पूछा। कमाल खाँ ने सारा समाचार आरम्भ से अन्त तक कह सुनाया। अपने पुत्र के घायल होने और शत्रु के द्वारा बन्दी हो जाने की खबर ने तो उसे क्रोध से पागल कर दिया। तबला, सरंगी, नाच-गान न जाने कहां चले गये ? क्रोध और शोक के आवेश में मुट्ठी बाँधकर, होंट किटकिटाता हुआ वह चीख-चीखकर कहने लगा कि 'अगर बूंदी राज्य को जड़ से खोदकर मैंने न फैंक दिया तो मेरा नाम कासिम खाँ नहीं। अब काफिरों की कयामत ही आ गई समझो। छत्रसाल! अब तू जहन्नुम का

मेहमान है। बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी।' इतना कहकर कमाल खाँ आदि घायल सैनिकों और कुछ फालतू सामान को वहीं छोड़ कर वह पैदल और सवारों सहित सारी यवन सेना को तत्काल बूँदी पर आक्रमण करने के लिये तैयार करने लगा। उस समय दस हज़ार के लगभग सैनिकों की चतुरंगिनी संचालक की आज्ञा से तत्काल सजकर शत्रु के देश में प्रवेश करने के लिये प्रस्तुत हो गई। रण के बाजे बजने लगे। एक विशालकाय गजराज पर अम्बारी रखवाकर, उसमें शाही सैन्य के सञ्चालक सूबेदार कासिम खाँ स्वयं विराजमान हुये। अन्य सेनानी अपने-अपने घोड़े, हाथियों पर यथायोग्य सवार हुये।

सबके सजकर गमनार्थ प्रस्तुत हो जाने पर कूँच का नक्कारा बजा। प्रस्थान आरम्भ हुआ। कर्त्तव्य की प्रेरणा और राजाज्ञा के अंकुश के कारण सैनिकों के पैर यात्रार्थ आप से आप बढ़ने लगे। 'क्यों' और 'कहाँ' का प्रश्न ही नहीं था। क्योंकि 'तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य करना और संघर्षरत रहते हुये सेनानी के इंगित पर प्राण दे देना है। क्या और क्यों के तर्क करने का तुम को अधिकार नहीं।' इस सिद्धान्त के अनुसार अनुशासन और व्यवस्था को भंग करना राजविद्रोह गिना जाता। अतः बिना समया-समय तथा उचितानुचित का प्रश्न किये आदेश के अनुसार सब सैनिक बह रहे हैं। इस प्रकार अपने सारे सबल दल को लेकर विना मार्गादि का विचार किये, क्रोध और क्षोभ के आवेश में सूबेदार बून्दी की ओर को बढ़ा चला जा रहा है। उसने शत्रु को शीघ्र समाप्त करने के विचार से सीधे मार्ग का अवलम्ब लिया है जो अत्यन्त संकटपूर्ण और संकीर्ण है। न कहीं कोई मनुष्य दृष्टिगोचर होता है और न पशु। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आक्रमणकारी के आतंक से भयभीत होकर इस क्षेत्र के निवासी इसे निर्जन छोड़कर पहले ही कहीं अन्यत्र चले गये हैं। दिनभर तो इस यवन-सेना का यात्रा-सम्बन्धी कार्यक्रम चलता रहा, क्योंकि बून्दी की तरफ को जाने वाला एक ही सदर मार्ग था और उसी पर अग्रसर

होते रहे। किसी से पूछने की भी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई, किन्तु अब चौराहे से यह निश्चय करना कठिन हो गया। अतः उसी चौराहे पर ठहर कर वे लोग किसी ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा करने लगे जिससे मार्ग पूछकर आगे बढ़ने का प्रयास किया जाय।

इसी समय एक मुस्लिम फकीर उनके निकट आकर कहने लगा—'अल्लाह के नाम पर मुझे कुछ खाना दे दो, मैं भूखा मरा जा रहा हूँ। मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया। काश कि इस इलाके के वीरान होने का मुझे पहले से इल्म होता तो कायदे के साथ सफर करता।' लोगों ने उसका नाम-ग्राम पूछा और जानना चाहा कि वह कहाँ से आया है और कहाँ जा रहा है। उसने कहा, 'मैं अजमेर का रहने वाला हूँ और अपने खास काम से बून्दी जा रहा हूँ।' इतना सुनकर लोगों ने उसे सूबेदार के निकट पहुँचा दिया। सूबेदार ने उसके साथ बात-चीत करके तथा खाना खिलाकर अपने ही दल में साथ ले लिया। उसका कार्य यह निश्चय कर दिया गया कि वह सेना के साथ-साथ आराम से रहकर उसको बून्दी का मार्ग बताता चले, कारण कि उस अज्ञात प्रदेश के पार्वत्य मार्गों से वे लोग बिल्कुल अनजान हैं। फ़कीर ने तुरन्त इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और भोजन आदि से निवृत्त होकर सूबेदार के दिये हुये घोड़े पर सवार हो सेना को मार्ग बतलाता हुआ सबसे आगे-आगे चलने लगा। सेना उसके पीछे-पीछे चलती रही। पहले-पहल मार्ग नीचे मैदान से ऊँचा होता हुआ चढ़ाई ग्रहण करता-करता पहाड़ी के ऊपर को जा रहा था। उसी पर अपने नेता के पीछे-पीछे सेना को भी चलना पड़ा। इस समय सेना मैदान से लगभग दो मील ऊँची चल रही है। यह मार्ग क्या, एक पहाड़ी की सड़क के रूप में है, जो एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँचकर, वहाँ से दूसरी पहाड़ी की चोटी पर स्थित, उस मार्ग से सम्बन्धित है, जो दूसरी ओर नीचे की तरफ उतर रहा है। इन दोनों पहाड़ियों की चोटियों के दो मार्गों को

मिलाने अथवा सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य एक पत्थरों का बना हुआ पुल कर रहा है, जिसने दोनों पहाड़ियों के बीच की लगभग एक मील गहरी अलाँघ्य, गहन तथा भयंकर घाटी को पाट रक्खा है। नेता-फ़क़ीर के पीछे चलती हुई सेना इस घाटी के पुल पर्यन्त की चढ़ाई को पार करके दूसरी पहाड़ी के मार्ग पर पहुँच कर नीचे की ओर उतरने लगी। यह मार्ग ढलवाँ पहाड़ी के नीचे की ओर को उतर रहा है और इतना संकीर्ण है कि इस पर दस मनुष्य से अधिक बराबर-बराबर पंक्ति बाँध कर बड़ी कठिनता से चल सकते हैं।

यह मार्ग जाकर एक ऐसी गहरी खाई में समाप्त हो गया है, जो शायद पहाड़ों के मध्य में कोई पानी एकत्रित होने की गहरी झील है और जिसके चारों तरफ़ पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ सीधी खड़ी हैं। सम्भवत: इस झील से पानी भरकर ले जाने या पशुओं को पानी पिलाने के वास्ते ही यह संकीर्ण मार्ग बनाया गया होगा। जिस खाई के पुल का विवरण दिया गया है वह खाई भी इसी झील से मिली हुई है। मानो पर्वतों के मध्यवर्ती बड़ी झील में एक पहाड़ी का द्वीप बन गया हो और उस दूसरे पहाड़ के मार्ग से उसे उस स्थान पर मिला दिया हो जहाँ कि उसकी ऊँचाई बहुत कम है। इस ढलान पर सूबेदार कासिम खाँ की सेना आसानी से पहुँच गई। झील के निकट पहुँच कर वह फकीर-नेता अपने घोड़े को पानी की तरफ ले जाने से पूर्व ही सूखी खाई में कूदकर जंगलों में विलीन हो गया। सेना की अगली तीन-चार पंक्तियाँ हाथियों की हैं और उनके पीछे घोड़ों के सवार, जिनके पीछे पैदल और सबसे पीछे सामान के छकड़े। हाथी बढ़ते-बढ़ते झील के निकट पहुँचे और अन्धकार के कारण जल-थल का अनुमान न लगने पर, वे पानी के निकट दलदल में उतर कर इस प्रकार फँस गये, मानो उनके पैर नीचे से किसी ने कसकर बाँध दिये हों। कासिम खाँ का हाथी अगली पंक्ति में होने के कारण ऐसा कस

कर दलदल में फँसा कि उसका हिलना-डुलना तक भी असम्भव प्रतीत होने लगा। हाथियों और छकड़ों के मध्य में घुड़सवारों की आठ-आठ की पंक्तियाँ हैं। वे इन दोनों के मध्य में अकर्मण्य होकर कैद हो गये हैं, क्योंकि उनके लिए न कहीं आगे बढ़ने के लिये स्थान अथवा अवकाश है और न पीछे हटने ही के लिए। इधर-उधर गहरी-गहरी खाइयाँ हैं, जिन की ओर को बढ़ना अपने आप को जान-पूछकर मृत्यु के मुँह में धकेल देना है। प्रस्तुत परिस्थिति में काफी देर तक खड़े रहने के उपरान्त यही निश्चय हुआ कि जब आगे बढ़ने के लिए मार्ग नहीं है तो पीछे ही लौट चलना चाहिये। अतः जब कुछ छकड़े लौटकर खाई के पुल पर पहुंचे तो यह देखकर बड़े हैरान हुये कि वह पुल भी टूटा पड़ा है और दोनों पहाड़ियों के मध्य में एक मील गहरी और लगभग बीस गज़ चौड़ी खाई अपना विशाल मुँह फाड़े खड़ी है। यह देखकर उनके रहे-सहे होश भी उड़ गये। इस चूहेदानी में वे लोग बुरी तरह फँस गये हैं। अब लग पाया है पता उनको शत्रुओं के विचित्र हुनर, रणचातुर्य और युद्ध-कौतुक (tactices and stratagems) और उनकी महत्ता का।

इस चिन्ता-जनक स्थिति में शत्रु-सैनिकों ने ऊँची पहाड़ी की गुफाओं से निकल कर छकड़ों के सामान को लूटना आरम्भ कर दिया। 'मारो मारो' 'हाय-हाय' 'लइयो' 'चलियो' 'मरे-मरे' 'अल्लाहो अकबर' और 'हर हर बम' के शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगे। घायलों की चीत्कार और पशुओं के कातर शब्द तथा शस्त्रों का खट-खट और छप-छप का नाद रात्रि के अन्धकार में उसको अधिकतर भयंकर बनाते हुए भय से हृदय कंपा रहा है। वीरगण डट-डट कर प्राण देते और कायर युद्ध छोड़कर भाग रहे हैं। अर्द्ध रात्रि के समय घनघोर युद्ध हो रहा है। इसी समय शत्रुओं ने उनके उस मार्मिक स्थान (vital point) पर भी दोनों तरफ से छापा मारा जो हाथियों

और घोड़ों की पंक्तियों को मिला रहा है। यवन सेना की स्थिति प्राकृतिक रूप से ही ऐसी सन्तोष-प्रद नहीं रही थी कि प्रस्तुत चूहेदानी में फँस जाने के उपरान्त भी कुछ पराक्रम प्रकट कर सकती। तिस पर भी तुर्रा यह है कि उनको शत्रु की गतिविधि, उसकी संख्या और शस्त्रों का पता नहीं है। पौरुष दिखाये तो किस पर और किस तरह ? आखिर ये हाड़ा लोग मनुष्य हैं या छलावे, यह उनकी समझ में ही नहीं आ रहा है।

सूबेदार की विशाल वाहिनी के सैनिक कीड़े-मकोड़ों की भाँति नष्ट हो रहे हैं। उनकी असामयिक मृत्यु का भयंकर दृश्य उसकी दृष्टि में घूम कर उसके हृदय को विदीर्ण कर रहा है। आज राजपूतों के युद्ध का नग्न-चित्र देखकर उसका यह गर्व क्षीण होने लगा है कि अधिक संख्या में मुण्ड-मण्डली एकत्रित कर लेने मात्र से ही किसी योग्य सेनापति के समर्थ रण-चातुर्यपूर्ण गौरव को धक्का नहीं पहुँचाया जा सकता। इतनी युद्ध-सामग्री से सज्जित विशाल सेना के होने पर भी आज उसका सर्व-नाशकारी संहार स्वयं उसके नेत्रों के सम्मुख हो रहा है, जिसे देखकर उसका हृदय शोक से सहस्र-सहस्र आँसू रो रहा है। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, छकड़ों की घड़घडाहट, घायलों की चीत्कार और वीरों की हुंकार, कानों के पर्दे फाड़ती हुई दृश्य को अत्यन्त भयानक तथा रौद्र बना रही है। 'अल्ला-हो-अकबर' और 'हर-हर बम' के नारे आकाश में गूँज कर प्रलय की सूचना दे रहे हैं।

इसी समय राजपूतों के कुछ वीर तलवार और भाले ले-लेकर हाथियों के यूथ पर झपटे। उन्होंने क्षणमात्र में उनके हौदे और अम्बारी तलवार के आघातों से काटकर भूमि पर गिरा दिये। सूबेदार कासिम खाँ के हाथी की अम्बारी भी कटकर दलदल में लुढ़क पड़ी। किन्तु हाथियों का सहारा लेकर उसके विशेष सेवकों ने उसे अम्बारी से निकाल कर तट पर लाने का प्रश्न सफलतापूर्वक हल कर लिया। इस समय राजपूतों

के ऊपर सूबेदार को इतना क्रोध आ रहा था कि वह तलवार लेकर पागलों की भाँति उनके ऊपर झपटने से रोके नहीं रुका। इसी बीच में वीर राजपूतों की तरफ से भी एक योद्धा उसके साथ लड़ने के लिए आगे बढ़ आया। कुछ देर तक दोनों वीर अपने हृदयों के गुबारों को निकालते हुये घोर द्वन्द्व में संलग्न रहे। कासिम खाँ का पुत्र राजपूतों का बन्दी है और उसके अतिरिक्त उसकी सेना की भी उन्होंने महान् क्षति की है। इसी भावना को लेकर वह क्रोध से विकराल रूप धारण कर जीवन-मरण की बाजी लगाता हुआ घोर संग्राम में संलग्न हो रहा है। किन्तु उसका विपक्षी भी कोई साधारण योद्धा नहीं है। उसके लिये इससे पराजित होना तो दूर रहा, ठण्डे प्रकार से युद्ध करके उल्टा अपने विपक्षी को ही युद्ध में घायल कर रहा है। उसका शत्रु जो क्रोध से अंगार बन उल्टे-सीधे प्रहार करने में निमग्न है, निरन्तर असफलता का मुँह देखता हुआ अपने आघातों को निष्फल पा रहा है। काफ़ी देर तक यह क्रम चलता रहा। अन्त में अधिक घावों से मूर्च्छित होकर सूबेदार कासिम खाँ धराशायी हो गया। विपक्षी ने उसके भुजदण्ड बाँध कर उसे उसी क्षण अपना बन्दी बना लिया और उसको अपने एक सहायक को सौंप दिया। सेना नायक-विहीन हो गई।

पाठक! सूबेदार को बन्दी बनाने वाले वीर राजपूत हाड़ा वंश-रत्न बूँदी-धनी स्वयं महाराव छत्रसाल जी हैं जिन्होंने उसे खिला-खिलाकर बन्दी बनाया है। सेनापति से वञ्चित हो जाने पर सेना में कोलाहल मच गया। महाराव छत्रसाल ने कड़ककर ऊँचे स्वर में कहा, 'यवन वीरो! तुम्हारा अध्यक्ष हमारा बन्दी हो चुका है। आप लोग हमारी इस चूहे-दानी में बन्द हैं। यदि हम चाहें तो तुम्हें इसी दशा में भूख और प्यास से तड़फाकर मार सकते हैं। यहीं तक नहीं, आसानी से तुमको तत्क्षण तलवार के घाट भी उतार सकते हैं। किन्तु नहीं, तुम्हारी अकारण हत्या से हमें कोई लाभ नहीं

और जब तक कि तुम किसी तरह की उद्दण्डता प्रकट न करो, हम ऐसा करेंगे भी नहीं। अतः तुम शस्त्रास्त्र रखकर आत्म-समर्पण कर दो तो तुमको इस बन्दीगृह से बाहर निकाल देंगे।'

भय के कारण सब के छक्के पहले ही छूट रहे थे। इस घोषणा को अपने लिए एक प्राणदायक विभूति समझ, शस्त्रास्त्र और घोड़े छोड़कर तथा हाथ उठाकर सब के सब आश्रित हो गये। हाड़ा-नरेश ने पुल के स्थान पर एक तख्तों की पुलिया बनाकर केवल सैनिकों को खाई के उस पार कर दिया; घोड़े और सामान अपने अधिकार में कर लिये।

सातवाँ परिच्छेद

प्रात:काल का समय है । ऊषा की वेला में सौम्यानन सूर्य्य की परम शोभायमान लालिमा बड़ी सुखद एवं सुन्दर दृष्टिगोचर हो रही है और विशेष रूप से उस समय जबकि वह लालिमा कलकल-निनादिनी यमुना के स्वच्छ जल को चीरकर निकल रही हो । उस समय तो उसकी शोभा अपनी चरम सीमा को पहुँचकर दृश्य को और भी अधिक दर्शनीय बना नेत्रों को असीमित आनन्द प्रदान कर देती है । प्रभात के समय में पक्षीगणों का कलरव नदी के निनाद से मिल कर कानों में स्वकाव्य-कला का कमनीय कमरस निचोड़ तथा संगीत की सुमधुर शकर से संमिश्रित कर उन्हें अधिकाधिक श्रवण-स्वाद लेने को उद्यत कर रहा है । शीतल मन्द समीर अपनी अनुपम सुगन्धि को लेकर घ्राणानन्द प्राप्त करने के लिए नासिका को नम्रतापूर्वक निमंत्रण दे रहा है । ऐसे समय में हृदय संसार की हाय-हत्या को छोड़ स्वत: प्रकृतिमय बन जाया करता है और अपनी रुचि वा समस्त ज्ञानेन्द्रियों को आप से आप उस ओर आर्कषित कर लिया करता है । यही दशा भारत-सम्राट् शाहजहाँ की परम प्रिय बेगम, प्रकृति के सौंदर्य की समर्थ उपासिका मुम्ताज के हृदय की है । उसने इस प्रकार की प्रात:कालीन प्रकृति-पय सम्बन्धी पिपासा को शान्त करने के लिए लाल किले के अन्तर्गत बारहदरी के ऊपर वाली छत की बरसाती में उन सुन्दर क्षणों को बिताने का निश्चय किया है । इसी कारण उस बरसाती को निराले ढंग से दरी-कालीन-तोशक-तकिया

गिलम-गलीचा, तारकशी के काम की रेशमी चादरों से सुसज्जित और झाड़-फानूसों से अलंकृत करा दिया है। नित्य प्रातः इस आनन्ददायक प्रकृति-क्रीड़ा के साथ साक्षात्कार करते रहने का विचार करके प्रस्तुत बेगम उक्त स्थान पर पधारा करती है। तदनुसार आज भी उसे इस समय उसी आनन्द को अनुभव करने के लिए उस स्वर्गीय दृश्य ने आमंत्रित किया है और वह बड़ी तल्लीनता के साथ उसका सुरस ग्रहण कर रही है। उसकी इस तल्लीनता को अकस्मात् दासी मुरादन ने प्रातःकाल का नाश्ता लाकर भंग कर दिया है। इस पर वह कुछ रुखाई से उसके साथ निम्न बातचीत करने लगी है।

मुम्ताज—आज इतना सवेरे नाश्ता कराने की क्या वजह है मुरादन ?

मुरादन—बादशाह सलामत के वास्ते आज नाश्ता सवेरे तैयार-हो गया। उनको नोश कराने के बाद सोचा कि हुजूर को भी लगे हाथ निबटा दूँ। नाश्ते को ठण्डा करने से क्या फायदा ?

मुम्ताज—आला हज़रत को आज इतना सवेरे नाश्ते की ज़रूरत क्योंकर हुई, मुरादन ?

मुरादन—गरीबपरवर को आज सवेरे दरबार खास करना है।

मुम्ताज—आज इस वक्त दरबारे-खास क्यों ? क्या कोई खास बात है ?

मुरादन—सुना है सरकार ! कि बूंदी का राजपूत राजा सल्तनत के ख़िलाफ बागी हो गया है, जिसके इन्तज़ाम के वास्ते सूबेदार कासिम-खां खुदावन्द के पास एक कैफियतनामा भी भेज चुके हैं। मगर सरकार ने उस पर कोई गौर नहीं फरमाया। इसका नतीजा यह हुआ है कि उसने जंग छेड़ कर सल्तनत को बड़ा नुकसान पहुँचाया है।

मुम्ताज—क्या नुकसान पहुँचाया है ? हमारे सुनने में तो अभी तक कुछ भी नहीं आया।

मुरादन—सूबेदार कासिम खाँ और उनके सारे अमले को कैद कर लिया है, सरकार ?

मुम्ताज—सूबेदार को कैद करने की वजह ? जो कुछ जानती है सारी कहानी साफ़-साफ़ खोलकर बयान कर।

मुरादन—असल वाकया यह है हुज़ूर ! कि रूपनगर की बड़ी राजकुमारी किरण बहुत खूबसूरत है, जिसके साथ महाराज जगतसिंह शादी करना चाहते हैं, मगर शेरशाह रुहेले ऊपर से महाराज के दोस्त बने रहकर उसे दांव-पेच से हथियाना चाहते हैं। इसलिये टट्टी की ओट शिकार करने के ख्याल से उन्होंने एक बड़ा जाल बिछा दिया है।

मुम्ताज—तो इस जाल का शिकार बेचारा कासिम खाँ कैसे बन गया ?

मुरादन—शेरशाह ने वज़ीर आजम की मारफत पहले रूपनगर के राजा को बादशाह सलामत के दरबार में तलब कराया। इसके बाद उसे कासिम खाँ की मारफत रास्ते में लुटवाकर कैद करा लिया। साथ ही उसके लड़के को चुनौती भिजवा दी कि किरणमयी को फिरौती की शक्ल में पाने पर ही राजा साहब को रिहा किया जा सकता है, नहीं तो नहीं।

मुम्ताज—क्या कासिम खाँ ने बहैसियत एक सूबेदार के खुले तौर से ऐसी हिमाकत की है ?

मुरादन—नहीं हुज़ूर ! उसने अपने दोस्त मुन्ने खाँ मेव उर्फ़ शेरेजंग के जरिये, जो डाकुओं का मशहूर सरगना है, यह काम कराया है।

मुम्ताज—डाकू को तो सज़ा देनी चाहिये, न कि उल्टा दोस्त बनाना।

मुरादन—इतना ही नहीं सरकार ! सूबेदार साहब ने तो उसे

अलीगढ़ के किले का किलेदार बनाकर मुग़ल फौज का मनसब भी सौंप दिया है। उसी जालिम ने हुजूर की बावफा रियाया रूपनगर के राजा को कैदी की हैसियत से उसी किले में बन्द कर दिया और फिरौती के तौर पर राजकुमारी की तलबी की।

मुम्ताज—यह तो बड़ा गहरा राज़ है! इसके आगे क्या हुआ?

मुरादन—बेशक हुजूर! इसके बाद रूपनगर वालों ने अपने राजा की रिहाई के लिये बूँदी के महाराव से इम्दाद माँगी। बूँदी वाले पोशीदा तरीके से रात को किले में घुसकर राजा और रानी रूपनगर को निकाल ले गये और साथ ही पकड़ ले गये डाकू शेरेजंग को भी।

मुम्ताज—शाबाश! कमाल कर दिखाया बूँदी वालों ने, मगर यह तो बग़ावत नहीं हुई, मुरादन!

मुरादन—इसके बाद शेरेजंग के लड़के बुन्दे खाँ ने सूबेदार से फरयाद की। वे पच्चीस-तीस हज़ार की तादाद में वसीह सिपाह लेकर छोटी-सी बूँदी रियासत पर चढ़ दौड़े। चढ़ाई की वजह का बहाना यह बताकर जंग का ऐलान किया गया कि बूँदी के महाराव ने ही रूपनगर के राजा को कैद कराया और शेरेजंग के राज़ से वाक़िफ हो जाने की वजह से उसको भी धोखे से पकड़कर अपना कैदी बना लिया है।

मुम्ताज—सूबेदार की इतनी जुर्रत कि आला हजरत तक को धोखा दे दिया? खैर, सूबेदार की चढ़ाई का क्या नतीजा हुआ?

मुरादन—क्या बयान करूँ, सरकार! एक हँसी, एक दुःख वाली कहावत है। एक औरत के धोखे में आकर दरिया खाँ मय अपनी एक हज़ार फौज के आग में जल मरे। सूबेदार के फ़रजन्द सहादत खाँ और मरदान खां की पाँच-छः हज़ार फौज को पानी में डुबाकर दुश्मन ने पस्पा कर डाला और मरदान खाँ व सहादत खाँ को कैद में डाल दिया। इसके बाद खुद जनाब सूबेदार साहब के लश्कर को झील से घिरी हुई एक पहाड़ी राह की चूहेदानी में घेर कर बरबाद कर दिया और सूबेदार

साहब को कर दिया नज़रबन्द हिरासत में लेकर।

मुम्ताज—जंग और इश्क में हर एक चीज़ जायज़ है। और फिर यह धोखे की लड़ाई का तरीका भी तो उन्हें मुग़लों ने ही सिखाया है। इसके बाद क्या हुआ?

मुरादन—शेरशाह ने कायम-मुकाम सूबेदार की हैसियत से बूँदी-धनी को यह हिदायतनामा भेजा कि अगर बूँदी-महाराज हमारे दो अफरीकी जवानों के साथ एक-एक से लड़कर उन्हें हरा देंगे तो उनका कुसूर माँफ हो जायगा। अगर वे खुद हार गये या लड़े नहीं तो बूँदी की रियासत से हाथ धोने पड़ेंगे। बूँदी-धनी ने इस चुनौती को मंजूर कर लिया।

मुम्ताज—राजपूत आम-बर्ताव में नर्म मगर जंग में बड़े खूँख्वार हो जाते हैं। खैर, उस एकाकी लड़ाई का क्या नतीजा हुआ?

मुरादन—बूँदी-धनी ने दोनों शाही बहादुरों को हरा दिया।

मुम्ताज—वे नामवर शाही बहादुर कौन हैं, जो सल्तनत की इज़्ज़त में चार-चाँद लगाकर आये हैं?

मुरादन—नवाब रुहेला जनाब शेरशाह और आमेर महाराज सवाई जगतसिंह बहादुर, जो अफरीदी सिपाही की सूरत बना नकाब डालकर लड़े और दोनों के दोनों हार खाकर अपने-अपने घर आ बैठे।

मुम्ताज—यही तो हमारे रुक्ने-सल्तनत हैं, जिनकी बहादुरी, दलेरी और कूव्वते-बाज़ू की आला हज़रत भाट बनकर उनका बखान करते और डींग हाँका करते हैं। शर्म से कर दी न इन्हीं लोगों ने हज़रत की गर्दन नीची?

मुरादन—हाँ, हुज़ूर! इस सारी ज़िल्लत को उठाकर अब सोचते हैं कि इस नाज़ुक वक्त में क्या करें।

मुम्ताज—बूँदी-धनी जैसे जांबाज़ बहादुर के खिलाफ़ और ज्यादा फ़ौज-कुशी करना और भी ज्यादा गये-सिरे की नादानी होगी।

मुरादन—तो क्या हुज़ूर ! बूँदी-धनी की बगावत को आपके खयाल से रोका ही न जाय ?

मुम्ताज—ज़रूर रोका जाय, मगर इन्साफ़ को मद्देनज़र रखकर। असल में तो ज्यादती बूँदी-धनी की नहीं, सल्तनत के कारकुनों की है। मेरे खयाल से तो बूँदीपति ने कोई बगावत नहीं की। उसने वही किया है, जो उसका फ़र्ज था। फ़र्ज को बगावत का नाम देना कोई दानाई नहीं है।

मुरादन—मगर खुदावन्द के खयाल में उसके बागी न होने की बात नहीं आई।

मुम्ताज—यह उनकी ग़लतफैमी है जो किसी दिन ज़रूर दूर होकर रहेगी।

मुरादन—शायद हो जाय। मगर अभी तो उम्मीद नहीं।

मुम्ताज—उम्मीद क्यों नहीं ! और हाँ, बूँदी के राजा छत्रसाल की शक्ल ध्यान में नहीं आ रही है। क्या वह हमारे हुज़ूर में कभी पेशे-कदम नहीं हुआ ?

मुरादन—आया तो ज़रूर होगा, मगर हुज़ूर को याद नहीं रहा है।

मुम्ताज—अरे यह वही तो नहीं जिसने तीरन्दाजी का हमारे हाथों से इनाम हासिल किया था। जिसने अपनी आँखों से पट्टी बाँध कर महज आवाज़ पर तीरकमान से निशाना मारा था।

मुरादन—हाँ, हाँ, वही बूँदी के महाराज छत्रसाल हैं। उस वक्त वह एक राजकुमार था।

मुम्ताज—मुरादन ! उस नौजवान ने तो मेरे दिल पर ऐसा गहरा असर किया है, यानी दिल में उसकी सूरत ऐसी समाई है कि हज़ार कोशिश करने पर भी आँखों के आगे से वह हटती ही नहीं। उसके खूबसूरत रौबीले चेहरे और बड़ी-बड़ी सुर्खी लिये डोरेदार नशीली आंखों ने तो

मेरे दिल में उसी वक्त से इश्क का तूफान-सा खड़ा कर दिया है। जी चाहता रहा कि फिर मिलूँ, मगर फिर वह सूरत देखने में नहीं आई।

मुरादन—गज़ब का जवांमर्द और दलेर है वह! इसके साथ ही चाँद-सा खूबसूरत चेहरा और गोल-गोल काले-कजरारे मृग के से नयन, कमाल का हुस्न है, हुज़ूर!

मुम्ताज—तुझसे मेरा कुछ छिपा नहीं है मुरादन! जैसी मेरे शरीर की हालत उसके दीदार होने पर हुई, वैसी खुदा दुश्मन की भी न करे। मेरा जिस्म क्या हुआ? उसकी बोटी-बोटी और हर बोटी का ज़र्रा-ज़र्रा और हर ज़र्रे का एक-एक तार उसके इश्क के रंग में एकदम रँग गया। वह रंग इतना गहरा और पक्का है कि अपना असर ज़िन्दगी-भर, नहीं-नहीं, कयामत तक भी कायम रहेगा। इस दिल में जो तड़फ उसके वास्ते पैदा हुआ करती है वह कभी खुद शाहजहाँ के वास्ते भी नहीं हुई। मेरा नारीपन—दरहक़ीक़त उस नौजवान को मुकम्मिल मर्द मानकर जिस तड़फ के साथ जागता है, दुनिया में दूसरे किसी पुरुष को देखकर नहीं। कुछ दिन से दिल ने उसे कुछ-कुछ भुला-सा दिया था, मगर आज अचानक उसका ज़िक्र आते ही उसकी याद फिर से दिल को सताने लग गई है। वह सूरत मेरे दिल में, दिल की रूह में और रूह के जजबात में और जजबात के झुकाव में ऐसी ज़ज्ब होकर बस गई है कि मुझे उसी का रूप बना दिया है। मेरा दिल, मेरी नज़र उसे छोड़ कर और मर्दों को मर्द मानने के लिये ही तैयार नहीं है—वह चाहे खुद खुदावन्द ही क्यों न हों। दिल का नाता तो मेरा उससे है। उसके नाम पर ताजो-तख्त तक बाखुशी कुरबान कर सकती हूँ।

मुरादन—इश्क ऐसी ही चीज़ है। उसके फूल राजमहलों के गमलों की बनिस्बत माद की मिट्टी में ज्यादा हौसले से फूलते-फलते और खिला करते हैं।

मुम्ताज—अब तक मैं अपने दिलवर का पता-ठिकाना नहीं जानती थी, मगर अब तो मैं······।

मुरादन—मगर उसकी तरफ से बादशाह सलामत का दिमाग भी बिगड़ा हुआ है। सल्तनत आज चलती है शेरशाह और महाराज जगत-सिंह के इशारे पर। आला हजरत आज तो कोई चीज़ ही नहीं हैं, वे तो महज नाम के बादशाह हैं।

मुम्ताज—मगर मैं जी-जान देकर भी अपने महबूब को सारे आइन्दा के जुल्मों से महफूज रखूँगी। वह भी क्या याद करेगा मेरी मुहब्बत को! शेरशाह और जगतसिंह कुछ हों, मगर छत्रसाल का बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

मुरादन—और रूपनगर की वह बदकिस्मत राजकुमारी?

मुम्ताज—उसकी शादी बजरिये स्वयंवर-जंग कराई जावेगी। मेरे खयाल से छत्रसाल का कोई मुकाबला न कर सकेगा। और इस-लिये वही जीतेगा, राजकुमारी को भी।

मुरादन—तो शाह को सारी असली बात हुजूर को ही समझानी होगी।

मुम्ताज—ज़रूर-ज़रूर, मैं आला हजरत से इस बारे में खुद बात-चीत करूँगी।

आठवाँ परिच्छेद

आज बूँदी की शोभा देखने योग्य है। समस्त हाट-बाट और बाज़ार इस समय विशेष रूप से सजाये गये हैं। राज-प्रासादों में झाड़-फानूस एवं झिलमिली लगाकर तथा दीपक आदि बहुतायत से जलाकर हर्ष प्रकट करने के लिये एक विशेष प्रकार की दीपावली मनाई गई है। मार्गों और बाज़ारों में स्वागत आदि के स्वस्तिपत्र लगाये गये हैं। सड़कें असामान्य रूप से साफ की गई हैं। सर्वसाधारण जनता के मकान भी स्वच्छ और साफ़ हैं और उन पर बन्दनवार बँधे हुये हैं। यह सारे हर्ष-प्रदर्शन नगर में इसलिये हो रहे हैं कि आज भारत-सम्राट् शाहजहाँ बूँदी-नगर में पधारे हैं। उनके राज्य में आने का कारण भी यह है कि विग्रह की विषाक्त दुर्भावना को दूर भगा करके उसके स्थान पर सन्धि की सद्भावना की स्थापना करना चाहते हैं। यही कारण है कि आज वे राजा, प्रजा सब के सम्मान, श्रद्धा तथा स्वागत-सत्कार के अभूत-पूर्व प्रकार से केन्द्र बन रहे हैं।

सूबेदार कासिम खां की महाराव बूँदी द्वारा गिरफ्तारी पर सम्राट् राजधानी से अजमेर पधारे। उनकी प्राण-प्रिय बेगम मुम्ताज भी उनके साथ आई। अजमेर में उन्होंने रूपनगर महाराज के मार्ग में लूटे जाने और शेरजंग द्वारा नजर क़ैद किये जाने से लेकर शेरशाह और महाराज जगतसिंह के बून्दी-नरेश छत्रसाल के साथ द्वन्द्व पर्यन्त की सारी घटनाओं की स्वतः गुप्त और प्रकट रूप से जाँच की और बूँदी-नरेश को उन सारे

आरोपों के लिये, जो उन पर लगाये जा रहे थे, निर्दोष निश्चित किया। शेरेजंग को सूली और सूबेदार कासिम खाँ को पदच्युत किये जाने की घोषणा हुई। बूँदी-नरेश छत्रसाल को मध्य भारत का सूबेदार बनाना निश्चय हुआ और व्यक्तिगत रूप से उन्हें सप्तहजारी मन्सब अता भी किया गया। मुम्ताज बेगम की विशेष कृपा से बूँदी-नरेश छत्रसाल को शाही ड्योढ़ी का आला हाकिम भी नियुक्त किया गया। इन सारी उपलब्धियों के प्रमाण-पत्र (सनद) और खिलअत आज के दरबार में दिये जायेंगे। दोनों युद्धों का उत्तरदायी मुन्ना मेव और कासिम खां को करार दे उनकी सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति को जुर्माने के रूप में लेकर बूँदी और रूपनगर की हानि की पूर्ति की जायगी। अलीगढ़ का क्षेत्र इन्द्रगढ़ राज्य में सम्मिलित होगा। रूपनगर की राज-कन्याओं की शादी स्वयंवर के द्वन्द्व द्वारा सम्पन्न होगी। बूँदी-महाराज और सम्राट् को एकत्रित करने में चमेलीजान, मुरादन और मुम्ताज़ बेगम का विशेष हाथ रहा है। उन्होंने यह कार्य बड़ी लग्न से पूरा कराया है। बून्दी नगर से पूर्व की ओर आराम उद्यान में सम्राट् का शिविर खड़ा है। उसके ऊपर शाही मुग़ल झण्डा गगन में ऊँचा फहरा रहा है। सम्राट् के महाशिविर के निकट और बहुत से तम्बू, डेरे, कनात और छोलदारियाँ शाही सैनिक तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के वास्ते लगी हुई हैं। सम्राट् का शिविर उन सबके मध्य में है।

लगभग दिन के दस बजे का समय हुआ। शिविर के सामने टिकटियों पर लटकने वाले घंटे में ज़ोर-ज़ोर से चोट पड़ने लगी। घंटे की आवाज़ दूर तक सुनाई दे रही है। घंटे की आवाज़ सुनते ही सारे दरबारी अपने निश्चित लिबास में दरबार के अन्दर जाकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। जो सरदार तथा सिपहसालार ताज़ीम के अधिकारी हैं, और जिनको दरबार में कुर्सी मिला करती है, वह कुर्सियों पर बैठ गये हैं शेष उनके पीछे खड़े हो गये हैं। मुख्य द्वार के दूसरी तरफ

एक ऊँचा मंच बनाया गया है। उस पर गद्दे, दरी, कालीन आदि बिछा कर तथा तारकसी और जरी की रेशमी चद्दरें फैलाकर तोसक तकिये और गिलम गेंदुओं से युक्त करके सिंहासन का अनुरूप कर दिया है। सरदार सब आ चुके हैं किन्तु शाहजहाँ अभी तक दरबार में नहीं पधारे हैं। इसी समय 'अदब कायदा होशियार' के शब्दों को ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करते हुये छड़ीबरदार प्रविष्ट हुये। उनके पश्चात् कुछ मुसाहिबों के साथ-साथ सम्राट् शाहजहाँ ने दरबार में प्रवेश किया। सब दरबारी नीची दृष्टि किये सम्राट् के स्वागत-सत्कार में हाथ जोड़ते हुये उठकर खड़े हो गये। सम्राट् मध्य मार्ग से निकलते हुए अपने आसन के निकट पहुँचकर समस्त उपस्थित सरदारों पर दृष्टिपात करते हुए अन्त में उस पर विराजमान हो गये। उनके बैठते ही सरदारगण पूर्ववत् बैठ गये। उसी समय भाटों ने विरुदावली का बखान करना आरम्भ कर दिया। मुख्यमन्त्री मंच के निकट सरदारों की सूची लेकर खड़ा हो गया और बारी-बारी से उनके नाम बोलता गया और वह सरदार सम्राट् के सम्मुख आकर उनको थैलियाँ अथवा हीरे-मोती आदि बहुमूल्य प्रस्तर भेंट कर अपनी राज-भक्ति का प्रमाण देने लगे। अमीर-उमरा सब सरदारों ने अपनी-अपनी भेंट कीं। भेंट-कार्य समाप्त होने के पश्चात् दरबार के अन्य उद्देश्य संपादित हुए।

इसी समय सूचना मिली कि बूंदी के महाराव दरबार में आ रहे हैं। यह समाचार सर्वसाधारण पर घोषित कर दिया गया। छोटे मन्सबदारों की कुर्सियाँ सम्राट् के सामने हैं, किन्तु पञ्च और सप्तहज़ारी मन्सबदारों की सम्राट् के मञ्च के नीचे उनके बराबर में हैं। इसी समय बूंदी-नरेश ने अपने दोनों भाइयों और मन्त्रियों सहित मुख्य द्वार से सम्राट् शाहज़हाँ के दरबार में प्रवेश कर शाहंशाह की वंदना की। मन्त्री ने एक चाँदी की तश्तरी महाराव के हाथ में दी, जिसमें एक सोने की खुली हुई डिब्बी रखी हुई है और उस स्वर्ण की डिब्बी में एक बहुमूल्य हीरा दमक रहा

है। महाराव ने वह तश्तरी सम्राट् के सम्मुख रख दी। मुख्य मंत्री ने उसी समय 'मुखातिब, मुखातिब' के शब्द कहे। बादशाह ने वह भेंट ले ली और मुख्य मंत्री की ओर देखा। मुख्य मंत्री ने दोनों हाथों के संकेत से सप्तहज़ारी मन्सबदारों की कुर्सियाँ दिखाईं। बूँदी-नरेश उनमें से एक पर विराजमान हो गये। उनके पश्चात् इन्द्रगढ़-नरेश मौकमसिंह और महासिंह ठिकानेदार थानोद ने सम्राट् को मुहरों की भेंट की। मुख्य मंत्री ने इन्द्रगढ़-नरेश और थानोद के ठिकानेदार को महाराव का भाई बतलाते हुए उनका सम्राट् से परिचय कराया। सम्राट् ने उचित ताज़ीम देते हुए फिर रहस्यभरी दृष्टि से मंत्री को देखा और मंत्री ने तत्काल इन्द्रगढ़राव को पञ्चहज़ारी और थानोद आपजी साहब को तीनहज़ारी मन्सबदारों में स्थान दिया। इसके पश्चात मुख्य मंत्री किसी विषय पर सम्राट् से वार्तालाप करते रहे। उसके पश्चात महाराव और उनके भाइयों को बारी-बारी से बुलाकर सम्मान-वस्त्र अर्थात खिलअत, नवीन जागीरों के प्रमाण-पत्र (सनद-पट्टे) प्रदान किये। एक शर्तनामे पर महाराव और सम्राट् दोनों ने हस्ताक्षर किए। उसके अनुसार सम्राट् की घोषणा में ऊपर कहे गए समस्त निर्णय कार्यरूप में परिणत हुये। इस प्रकार बूँदी महाराव फिर साम्राज्य से सम्बन्धित हो गये। जिस समय मान-वस्त्र (खिलअत) और प्रमाण-पत्र (सनद) आदि महाराव को दिये गए, उसी समय सभा-मञ्च के ऊपरी भाग में बैठी हुई बेगम मुम्ताज उस दृश्य को देखकर प्रसन्नतापूर्वक करतल-ध्वनि कर अपना हर्ष प्रकट करने लगी। आज मुरादन भी उसके हर्ष में भाग ले रही है। दरबार का समस्त निश्चित कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर मन्त्री ने सम्राट् को सूचना दी और सम्राट् ने आज के दरबार को बरख़ास्त कर दिया।

नौवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल का समय है। आकाश मेघमाला से आच्छन्न है। कभी-कभी झीनी-झीनी बूँदों के झरने झरने लगते हैं। शान्त शीतल मन्द सुगन्ध संयुक्ता सुखद समीर हृदय में हर प्रकार से अपूर्व उत्साह और स्फूर्ति प्रदान कर साहस और शौर्य्य के कार्य करने की प्रेरणा दे रहा है। ऐसे समय में वीरों की तो बात ही क्या कायरों के हृदय भी उत्साह-उमंगों से भर कर शौर्य्यपूर्ण कार्य्य कर दिखाने के लिये तत्पर हो जाते हैं। ग्रीष्मकाल का यह प्रातःकाल भी आज स्वास्थ्यदायक और शीतल है, कारण कि सूर्य भगवान् ने अभी तक दर्शन नहीं दिये हैं। सम्भवतः वे भी अपने कार्य्य से छुट्टी करके इस शुभ वेला में कहीं आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजनार्थ चले गये प्रतीत होते हैं। ठीक ऐसे ही समय में बून्दी राज्य के गहन वनों के अन्दर एक शिकारी-दल अहेरिया उत्सव में संलग्न हो वन्य-पशुओं के पीछे खाई-खल्लर, वन-बह्वर तथा झाड़-झंकारों में टक्कर खाता फिर रहा है। इस भाग-दौड़ में और साथी तो पीछे छूट गये हैं केवल इस दल के दो प्रमुख नेता एक नाहर को अपने लक्ष्य में देखकर उसके पीछे अपने घोड़े दौड़ाये चले जा रहे हैं। शेर आगे जाकर एक गुफा में छिप गया है जिसे ये लोग ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये हैं। हारकर वे इस निश्चय के साथ वहाँ अपने आखेट की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उसके गुफा से बाहर होते ही उसे गर्माया जायेगा। कुछ देर चुप रहने के उपरान्त ये दोनों इस प्रकार वार्तालाप करने लगे, "यह बहुत

ही अच्छा हुआ जो बून्दी से युद्ध का संकट टल गया, अन्यथा कासिम खाँ ने तो हमारे लिए आपत्ति के बीज बोने में किसी तरह की कसर छोड़ी ही नहीं थी।"

"भाग्य से ही इस संकट से मुक्ति मिल पाई है, श्रीमान्!"

"भाग्य तो कोई वस्तु है ही, किन्तु उसके साथ ही इस सारे अध्याय में मेरे आदर्श बन्धु, तुम्हारा कार्य्य भी कल्पना से कहीं अधिक ऊंचा और सराहनीय है। रूपनगर महाराज को मुक्त कराना, कासिमखां को हराकर बन्दी बनाना और इसके उपरान्त सम्राट् को सन्धि करने पर बाध्य कर देना आप जैसे नीति-परायण सामन्त का ही कार्य है, नहीं तो क्या यह कार्य कुछ कम कठिन है?"

"मैंने तो केवल अपना कर्तव्य-मात्र ही पालन किया है जिसके लिये पिता तुल्य अग्रज और राजा के मुँह से इस प्रकार प्रशंसा करना शोभनीय प्रतीत नहीं होता।"

"कर्तव्य-पालन ही तो संसार में सबसे कठिन कार्य है और है सबसे अधिक सराहनीय। जिसके लिये मैं ही क्या स्वयं शाहजहाँ...।"

"हाँ, तभी तो मैं आपको इसका अपने से अधिक श्रेय प्रदान करता हूँ, क्योंकि सम्राट् को संधि पर बाध्य करने वाली स्वयं सम्राज्ञी हैं, जो कि अग्रज के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हैं।

"महत्व एवं मन्सब में उन आमेर-नरेश से, जो कि सदा से साम्राज्य के सबल स्तम्भ रहे हैं, हमको कम न रहने देना इतिहास में एक अपूर्व घटना है और है आमेर-नरेश के दिल को दुखाने वाली वार्ता।"

"शाहजहाँ स्वयं जानते हैं कि महाराज जगतसिंह का व्यक्तित्व इतना ऊँचा नहीं, जो आप से उन्हें ऊँचा समझा जाय। धन-धान्य में अधिक हैं तो क्या हुआ? राजकुमारी रूपनगर के हथियाने के लिये धीरे-धीरे गण्डे-डोरे डाल रहे हैं, यह कोई अच्छी बात है क्या?"

वाचक! अब आपको मालूम हो गया होगा कि प्रस्तुत सिंहाखेट में

तल्लीन और कोई नहीं, स्वयं बूँदी-नरेश छत्रसाल और उनके भाई मौकमसिंह इन्द्रगढ़ाधिपति हैं, जो सिंह के गुफा से बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उन्हें इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा कि, 'बचाओ, बचाओ' की चीत्कार-ध्वनि सुनाई दी। बूँदी-नरेश प्रस्तुत चीत्कार-ध्वनि को सुनकर तथा अनुज को वहीं ठहरने का आदेश देकर इस प्रकार घबराकर उसकी तरफ पैदल ही दौड़े कि घोड़े आदि को लेने तक का भी उन्हें ध्यान नहीं रहा। घटनास्थल पर पहुँचकर क्या देखते हैं कि एक मनुष्य पर एक विशालकाय नाहर ने आक्रमण कर दिया है और उसे अपनी थाप से गिराकर अपने खाने के लिए घसीटता हुआ ले जा रहा है। भयभीत होकर उसके ही मुँह से वहाँ यह चीत्कार-ध्वनि हुई है, जिस पर बूँदी-नरेश इधर आये हैं।

घटनास्थल पर पहुँचकर बूँदी-नरेश से यह दयनीय दृश्य नहीं देखा गया। वे उस मनुष्य के रक्षार्थ शीघ्र सिंह को यह कहकर ललकारते हुये कि 'ओह वनराज ! उस दीन प्राणी पर क्या ज़ोर आजमा रहा है, इधर आ और मेरा शिकार कर'—अपनी कौली में दाबते हुये, उसके साथ मल्ल-युद्ध करने लगे। बूँदी-नरेश को मध्य में पड़ता देखकर सिंहराज ने उस मनुष्य को तत्काल अपने पञ्जों से मुक्त कर दिया और महाराव के साथ अत्यन्त क्रुद्ध होकर द्वन्द्व करने लगा। महाराव ने ज्यों ही वनराज की बगली चढ़ाकर उसे कुश्ती में पछाड़ने की कोशिश की, त्यों ही उसने एक-दो थाप महाराव की कमर में जमा दीं जिससे उनकी पीठ पर घाव हो गया और उस घाव से चिरमिराहट के साथ रक्त प्रवाहित होने लगा। इस समय वे क्रोध से लाल वर्ण हो स्वयं महाभयंकर दिखाई पड़ रहे हैं। उन्होंने रोष के आवेश में कमर से पकड़ कर सिंहराज को उठा लिया और बड़े ज़ोर से भूमि पर धर पटका। भूमि पर पड़े हुये उस हिंसक पशु को उन्होंने उसके संभलने से पूर्व ही फिर से दाब लिया और घुटनों की मार

देकर उसका दम निकालने लगे। नाहर अधमरा हो गया। इस समय वह अपने आपको अपने से कहीं अधिक सबलतर नाहर के पञ्जों में जकड़ा हुआ अनुभव करने लगा। ज्यों ही उसने भयंकर दहाड़ मारते हुये फिर ज़ोर मारकर काटने को मुँह खोला, त्योंही महाराव ने उसके मुँह में अपना कमरबन्दा ठूँस दिया और दोनों हाथों से उसके पञ्जों को पकड़ तथा उसकी पीठ पर सवार होकर उसे घुटनों से मार-मारकर ढीला कर डाला। नाहर प्रायः मरणासन्न हो गया। उसी समय एक तीर बड़े वेग से दाहिनी ओर से आया और महाराव की दाहिनी जांघ में घातक घाव करता हुआ समा गया। अब तो उनको अपनी भी जान के लाले पड़ गये; क्योंकि विष में बुझे तीर के कारी घाव की जलन और शरीर को शक्तिहीन करने वाले, उनसे छूटते हुये रक्त के फुआरे उनकी दशा को अत्यन्त दारुण बनाने लगे। उन्होंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी। इस समय उनको अपनी मृत्यु साक्षात् सामने खड़ी दिखाई पड़ने लगी। फिर भी वह इस विचार से नाहर को समाप्त करने का प्रयत्न करने लगे, क्योंकि जीवित रहकर वह उस व्यक्ति को भी मार डालेगा, जिसकी रक्षार्थ वे अपने प्राणों पर खेले हैं। अतः उन्होंने अपने पद प्रहारों को और भी ज्यादा तेज़ कर दिया। जिनके सबल एवं घातक आघातों से शीघ्र ही वह नाहर भी मरकर ढेर हो गया। जब महाराज को यह निश्चय हो गया कि सिंह मर गया है तो उसके सीने से पृथक हुये और उस मनुष्य के निकट जाकर उसकी अवस्था का अध्ययन करने लगे जिसे उन्होंने नाहर के पंजे से छुड़ाया है और जो इस समय भी मूर्छित पड़ा है। उस व्यक्ति की अवस्था को देखकर उन्होंने अनुभव किया कि उसके शरीर पर ऐसा कोई प्रहार नहीं हुआ, जिससे उसके प्राण जाने का भय हो। उसे मूर्छा केवल भय के कारण से ही हुई है, आघात के कारण नहीं। यदि उसके मुँह में पानी

डाला जाय तो वह होश में आ सकता है, मगर पानी लाये कौन ? उनकी अपनी अवस्था तो उस व्यक्ति से भी अधिक खराब है। भाई मौकमसिंह को तो वहीं घोड़ों की रक्षा और गुफा में घुसे हुये आखेट के बाहर आने की प्रतीक्षा में छोड़ा हुआ है जिनके कान तक यहाँ से आवाज भी नहीं पहुँचाई जा सकती। इस तरह अपने कर्तव्य विषयक विचार में मग्न होते ही उनकी दृष्टि उस मूर्छित मनुष्य की जेब के कागज पर गई और उसे इसलिए निकाल कर पढ़ने लगे कि शायद उससे उस मनुष्य का कुछ विशेष परिचय प्राप्त हो जाय, किन्तु उसे पढ़कर वे और भी चक्कर में पड़ गये; क्योंकि वह कागज और कुछ नहीं, केवल रूपनगर की राजकुमारी किरणमयी का उन्हीं के नाम भिजवाया हुआ पत्र है, जिसे सम्भवतः वह वाहक उनके पास बूंदी को लेकर जाते हुये मार्ग में शेर का आखेट हो गया है। अस्तु, पत्र में उन्होंने पढ़ा—

"हे हाड़ा बंशावतंस महाराज छत्रसाल ! आपने मेरे माता-पिता को शत्रु के बन्दीगृह से मुक्त कराकर, अपने उपकारों के लिये मुझे ऐसा ऋणी कर दिया है कि श्रीमान् के वास्ते प्राण देकर भी उससे छुटकारा नहीं पा सकती। इसके अतिरिक्त जब आप उनको यहाँ छोड़ने आये और दासी को दर्शन देकर कृतार्थ किया, तो आपके व्यक्तित्व ने मुझे ऐसा प्रभावित किया कि मैंने मन और वचन से आपको अपना पति निश्चय कर लिया और एक सच्ची क्षत्राणी के अनुरूप आप ही के ध्यान में रहने लगी हूं जिसका शायद आपको ध्यान भी नहीं है। इधर अम्बर-नरेश, जिनको मैं बिल्कुल नहीं चाहती, छल और बल से मुझे पाने की घात लगा रहे हैं। कहीं ऐसा न हो जाय कि वे अपने दुस्साहसपूर्ण प्रयत्नों में सफल हो जाएँ और आप निश्चिन्त बैठे रहें। इसलिए मैं इस वाहक द्वारा यह पत्र पठाकर परिस्थिति से परिचित करा रही हूँ।

—किरण"

पत्र को पढ़कर वे अत्यन्त चिन्तातुर हो अपने को अत्यन्त असमर्थ दशा में पाकर दुखी हुए, जिससे उन्हें ऐसा कठिन आघात पहुँचा कि वे चीखकर मूर्छित होगये। उस चीख को सुनकर और महाराव को शीघ्र लौटता न देखकर मौकमसिंह जी भी वहां आ पहुँचे और प्रस्तुत दृश्य देखकर अत्यन्त चकित हो गए।

दसवाँ परिच्छेद

राजस्थान का परम प्रतापी सूर्य जो उन्नत पथ पर अग्रसर होता हुआ, विष्णु के मध्यम धाम पर्यन्त उत्थित होकर, अपने शौर्य-पूर्ण प्रकाश की प्रदीप्ति से संसार को चकित कर रहा था, आज अस्ताचल के निकट पहुँच अपने अन्तर्धान होने की सूचना देने लगा है। भारत का वह क्षत्रित्व, जिसने देश की सौभाग्य-श्री के संरक्षण का भार एक प्रहरी बनकर अपने ऊपर लिया था आज अपने उस दायित्व को मध्य एशिया के निवासी तथा मानवी-सभ्यता के प्रतीक मुग़ल सम्राटों की चिर-सेविका बनाकर एवं उसकी दया पर छोड़कर, आप स्वयं संकीर्णहृदयता, अज्ञान और अविचार की क्षुद्र स्वार्थमयी मदिरा पी मस्त हो, घोर निन्द्रा में पड़-कर सो रहा है।

प्रस्तुत मुग़ल सम्राट् देश के उक्त क्षत्रित्व रूपी बबर शेर को अपना पालतू अनुचर बना अपने इंगित पर इस प्रकार से नचा रहा है जैसे कोई चतुर कलन्दर अपनी डुगडुगी के संकेत पर टुकड़े के दास पालतू बन्दर को नचाया करता है। जनता के प्रतिनिधि देश के इन सब राजा-महाराजाओं ने अपने उस महान् स्वातन्त्र्य दायित्व को तुच्छ वस्तु समझ मन्सब आदि साम्राज्य में उच्च पद प्राप्त करके उस बिना दामों की दासता को अधिक गर्व की वस्तु समझकर अपनाया है।

इस प्रकार सम्राट् शाहजहाँ के शासन काल में कहने को तो सभी नरेश अपने स्तर और मर्यादा के अनुसार सम्राट् से नायकत्व (मन्सब)

मानवस्त्र (ख़िलअत) तथा अन्य प्रकार के पद मानादि प्राप्त करके उसकी सेवा का कार्य करते हैं किन्तु उन सब में आमेर-नरेश महाराजा जगतसिंह प्रमुख गिने जाते हैं। उनको सम्राट् के पुत्रों की भाँति सप्त हज़ारी मन्सब प्राप्त है; जो साधारणतया अन्य राजा-महाराजा या नवाबों को नहीं। इसके अतिरिक्त उनका साम्राज्य में सम्मान भी काफ़ी है और हर आवश्यक मामले में एक विशेष परामर्शदाता सचिव (मुसाहिब) के रूप में स्वयं सम्राट् उनका परामर्श लेता है और उस परामर्श के अनुसार कार्य भी होता है। तात्पर्य यह है कि उनकी साम्राज्य में खूब चलती है।

इसी कारण रूपनगर की राजकुमारियों के विवाह-सम्बन्ध के विषय में भी सम्राट् ने उसके परामर्शानुसार ही विवाह की तिथि निकट-भविष्य की निश्चित करते हुये यह निर्णय दिया है कि विवाह एक स्वयंवर द्वन्द्व के फलस्वरूप उस विजयी व्यक्ति के साथ सम्पन्न किया जाय जो इस द्वन्द्वयुद्ध में सर्वश्रेष्ठ योद्धा प्रमाणित हो। इस स्वयंवर में आमेर-नरेश को और तो किसी का भय नहीं है केवल बूँदीपति छत्रसाल हाड़ा की ओर से कुछ चिन्ता अवश्य है, जो इस समय के प्रख्यात योद्धा हैं, क्योंकि वह उनको कुछ दिन पूर्व ही एक द्वन्द्वयुद्ध में पछाड़ चुके हैं। फिर भी इस चिन्ता को शेरशाह ने यह विश्वास दिलाकर मिटा दिया है कि अपनी युक्ति से छत्रसाल के कंटक को उनके मार्ग से दूर कर देगा। अतः इस समय इस चिन्ता से तो वे बिल्कुल मुक्त हैं किन्तु इस बात का परिताप उनके हृदय में अवश्य है कि शाहजहाँ ने बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा को, जो औचित्य से अधिक सम्मान और पद प्रदान किये हैं, उनके देते समय आमेर-नरेश के विरोध का भी ध्यान नहीं रक्खा है। तिस पर भी इसका कोई विशेष प्रभाव उन पर इसलिये नहीं हुआ, क्योंकि सम्राट् ने यह सब कुछ केवल अपनी परम प्रिय बेगम मुम्ताज की इच्छा को पूरा करने के लिये तद्प्रसन्नतार्थ केवल भावावेश में किया है, जिसका भूल-सुधार वे किसी भी उचित समय पर कूटनीति से करा सकेंगे; कारण

कि बूँदी-नरेश के विरुद्ध प्रत्येक कार्य में उनका सहयोग देने के लिये छत्रसाल के चिर शत्रु शेरशाह नवाब रुहेला ने शपथ ग्रहण कर रक्खी है और शेरशाह इतना तिकड़मी भी है कि येन-केन-प्रकारेण बूँदी-नरेश को अवश्य नीचा दिखाकर छोड़ेगा। इस समय तो स्वयंवर के लिये सामान्य रूप से तैयारी मात्र करनी है।

इस प्रकार आज साम्राज्य के कार्यों से छुट्टी पाकर और सम्राट् से तत्-सम्बन्धी अनुमति लेकर आमेर-नरेश निश्चिन्त मन से आमेर के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। शेरशाह एक हितैषी मित्र होने के नाते उस घनिष्ठता का प्रमाण देने के विचार से, उनके यात्रा-सम्बन्धी कार्यों में उनकी दत्त-चित्त हो सहायता कर रहे हैं और करा रहे हैं संकलन, प्रत्येक मार्गोपयोगी पदार्थ का।

विदाई की वेला आ जाने पर दोनों मित्र हृदय मिलाकर इस प्रकार गाढ़ालिंगन के साथ मिले हैं, मानो एक हृदय और दो शरीर हों। दोनों के नेत्रों से स्नेहाश्रु उमड़कर बरसाती नालों की भाँति बहने लगे हैं। यह प्रदर्शन तो बड़ा भावोत्पादक हुआ है, किन्तु इसमें यथार्थता अथवा वास्तविकता कितनी है, सो ईश्वर जाने। निश्चित समय से यात्रा प्रारम्भ हो गई है और उनकी टोली कूच करती हुई अपनी मंजिल को दाबती जा रही है। यात्रा-काल के अन्दर अम्बरेश के मस्तिष्क में यदि कोई विचार आता है, तो वह प्रस्तुत तीन समस्याओं, अर्थात् बूँदीपति से वैरशोधन, राजकुमारी किरणमयी की प्राप्ति और शेरशाह के साथ सौहार्द्र-निर्वाह, से ही सम्बन्धित होता है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। यह जानकर कि तिमिरोत्पादक सन्ध्या-काल संन्निकट है और रात्रि-काल में यात्रा करना उचित नहीं है, एक सुविधा-जनक स्थान को देखकर रात्रि-भर यहीं विश्राम करने की आज्ञा देते हुये टोली का आगे बढ़ना रोक दिया है। अतः उक्त निश्चित स्थान पर ही, जो कि बीना-नगर के निकट है, रात्रि-भर ठहरने की व्यवस्था हो गई है। भूमि को

साफ कर तम्बू-डेरे तान दिये गये हैं। उनके मध्य में महाराजा के वास्ते एक अति-उत्तम विशाल शिविर बनाया गया है और उसे दरी, जाजम, गलीचे, कालीन एवं रंग-बिरंगी तारकसी के काम से युक्त बहुमूल्य रेशमी चादरों को बिछाकर राजोचित रीति से सजा दिया गया है। शिविर में मुख्य द्वार के सामने पार्श्व में एक विशाल मंच भी बनाया गया है, जिस पर मखमल के गलीचे, कालीन, गिलम-गेंदुये और तोसक-तकिये बड़ी उत्तमता से लगा दिये गये हैं। इसी मंच पर एक तकिये के सहारे विराजमान होकर अम्बर-नरेश अपने निकट खड़े हुये, अपने कतिपय अन्तरंग सरदारों के साथ किन्हीं घरेलू विषयों पर वार्तालाप कर रहे हैं।

इसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि बूँदी के हाड़ा-नरेश महाराव छत्रसाल जी के कनिष्ठ भ्राता इन्द्रगढ़-नरेश श्री मौकमसिंह जी पधारे हैं और वे श्रीमान् से साक्षात्कार करना चाहते हैं। इस पर महाराज ने अपने सरदार भूरसिंह को ससम्मान उन्हें अपने निकट लाने का आदेश दिया। भूरसिंह के साथ-साथ मौकमसिंह महाराज के निकट पहुँचे और उनको सम्मान के साथ प्रणाम कर सामने खड़े हो गये। महाराज ने अपने स्थान से खड़े हो कर उनका स्वागत किया और फिर अपने निकट बैठाकर निम्न प्रकार से वार्त्तालाप आरम्भ कर दिया।

अम्बरेश—यहाँ मार्ग में दर्शन किस प्रकार हो गये। मैं तो बूँदी-महाराव को उनके मन्सब और जागीर-सम्बन्धी उपलब्धियों के लिये उन्हें बधाई देने के लिये बूँदी जाने का स्वयं ही विचार कर रहा था, किन्तु आपके दर्शन का इस समय होना तो किसी अनिष्ट का सूचक प्रतीत होता है।

मौकमसिंह—अग्रज सिंहाखेट में घातक रूप से घायल हो गये हैं, अतः मैं उन्हीं के विषय में प्रस्तुत दुर्घटना की सूचना लेकर सम्राट् के निकट जा रहा हूँ और साथ ही वहाँ श्रीमान् के भी दर्शन करना

अनिवार्य था, जो मेरे कार्य-क्रम का एक अंग है। किन्तु हर्ष की बात है कि श्रीमान् यहाँ मार्ग में ही उपलब्ध हो गये।

अम्बरेश—बूँदी-नरेश छत्रसाल जी सिंहाखेट में घातक रूप से घायल हो गये हैं, यह तो अत्यन्त खेद की बात है। किन्तु वे घायल हुए कैसे, यह जानने की उत्कट इच्छा है। क्या उनके ऊपर शेर ने आक्रमण कर दिया था या कोई दूसरी बात है ?

मौकमसिंह—जिस समय वे नाहर के साथ मल्ल-युद्ध में संलग्न थे, उनकी दाहिनी जाँघ में एक तीर आकर लगा, जिससे भारी घाव हो गया। शीघ्र ही घावों की मरहम-पट्टी कराई गई और घातक की खोज की गई।

अम्बरेश—घातक की खोज ! क्या उसका कुछ पता लगा ? किन्तु मरहम-पट्टी के पश्चात् महाराव का स्वास्थ्य कैसा रहा ?

मौकमसिंह—घाव तो कारी है ही। हाँ, उपचार और सेवा-सुश्रषा का प्रबन्ध ठीक है। उसी के आधार पर कुछ उनके प्राण बचने की आशा हो चली है, अन्यथा प्राण जाने में सन्देह ही क्या था। दूसरी बात यह है कि खोज करने पर ईशरदा ठाकुर साहब का विशेष सेवक फतह खाँ उस जंगल में कमान लिये हुये घूमता देखा गया।

अम्बरेश—क्यों, क्या फतह खाँ को आपने बन्दी नहीं कर लिया ?

मौकमसिंह—जी, नहीं। खोजा लोगों को केवल पहचानने की आज्ञा थी। बन्दी बनाकर लाने की आज्ञा नहीं दी गई थी।

अम्बरेश—आप सुन रहे हैं सरदार भूरसिंह। इन्द्रगढ़-धनी को आपके सेवक फतह खाँ से शिकायत है कि उसने महाराव पर छिपकर तीर चलाया।

भूरसिंह—फतह खां पर यह आरोप मिथ्या लगाया गया है। वह ऐसा मनुष्य कदापि नहीं है। दूसरे उसकी श्री महाराव से कोई शत्रुता

नहीं है, और तीसरे आजकल फतह खाँ नवाब साहब शेरशाह रुहेला की पेशी में है।

मौकमसिंह—हाँ, श्रीमान् ! तीर पर नवाब शेरशाह का नाम भी अंकित है। इस बात से भी अपराध उसी का प्रमाणित होता है।

अम्बरेश—तो क्या आपका यह विश्वास है कि वह बाण नवाब साहब ने महाराव के वध के लिये उसको प्रदान किया होगा ?

मौकमसिंह—इसका यह अभिप्राय तो नहीं, किन्तु फतह खाँ अपराधी अवश्य है।

अम्बरेश—अच्छा ! फतह खाँ के अपराध की हम जाँच कराएंगे।

मौकमसिंह—श्रीमान् को कष्ट करने की क्या आवश्यकता है। अपराधी हमें सौंपा जाय। हम ही जाँच करा लेंगे। साक्षीजन भी बूँदी में ही हैं और यह मामला भी बूँदी राज्य का ही है।

भूरसिंह—फतह खां बूँदी नहीं भेजा जायगा। विधानानुसार उस पर मामला आमेर में ही चल सकता है, अन्यत्र नहीं। क्या अम्बरेश पर भी आपका कुछ सन्देह है ?

मौकमसिंह—जब दोनों राजा मित्र हैं, श्रीमान् ! तब तो यह श्रीमान् की ओर से कुछ-कुछ ज्यादती है।

भूरसिंह—मित्रता के ही कारण तो मामला भी उठाया जायगा, नहीं तो इस आरोप का और तो कोई आधार ही नहीं है।

मौकमसिंह—ईशरदा ठाकुर साहब ! आपकी वार्ता का ढंग तो मित्रभाव सूचित नहीं करता।

अम्बरेश—सोचने की बात यह है कि आखिर फतह खाँ ने ऐसा किया क्यों ?

मौकमसिंह—राजकुमारी रूपनगर के पाने की इच्छा वाले प्रतिद्वन्द्वियों की प्रेरणा पर।

अम्बरेश—आप उनका प्रतिद्वन्द्वी किसे समझते हैं ?

मौकमसिंह—जो वास्तव में उनके प्रतिद्वन्द्वी हैं। खैर, छोड़िए इन बातों को, उनसे क्या सम्बन्ध ?

अम्बरेश—छोड़िए क्यों ? नाम बतलाइए न उनके ?

मौकमसिंह—नाम का क्या होगा, श्रीमान् ! अब तो नाम सब को ज़ाहिर हैं।

अम्बरेश—मैं और नवाब रुहेला, क्यों ? यही आशय है न आपका ?

मौकमसिंह—मैं तो ऐसा नहीं कहता श्रीमान् ! आप चाहे कुछ मान लें।

अम्बरेश—कहते तो नहीं, पर दिल में विश्वास तो अवश्य ऐसा ही है। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि हम दोनों में से ऐसा कोई क्यों करेगा ? हमें उनसे कोई भय तो है नहीं ! न तो वे हमसे जनशक्ति में ही अधिक हैं और न शारीरिक बल में ?

मौकमसिंह—शारीरिक बल तथा पराक्रम में तो आप ही उन्हें अपने से अधिक मानते हैं। स्वयंवर-युद्ध के लिए ही तो ऐसा किया गया है। और यह भी अपनी पराजय के भय के कारण। क्योंकि भीरु पहले ही परास्त जो किए जा चुके हैं।

अम्बरेश—क्या आज आप अण्टा चढ़ा के आये हैं, जो ऐसी बेसूद बातें कर रहे हैं। हमसे उनका द्वन्द्व कभी नहीं हुआ। साथ ही यह भी निश्चित समझिए कि हम उनसे द्वन्द्व में कभी घबराएंगे भी नहीं।

मौकमसिंह—तभी जब आप और शेरशाह अफरीदी योद्धा बनकर गए थे। क्या इतने ही में भूल गये ? वेश छिप सकता है, किन्तु सचाई तो नहीं छिप सकती ?

अम्बरेश—(कुछ झेंपकर) यह आपका केवल अनुमान है। नहीं तो हम लोगों का वेश बदलने से क्या प्रयोजन था। आपको विश्वास करना चाहिये कि वास्तव में वे सैनिक अफरीदी ही थे, हम नहीं।

मौकमसिंह—अच्छा, होंगे ! इस बात को जाने दीजिये !! फिर

सही !!! अभी तो ईश्वर की कृपा से बूँदी-नरेश जीवित हैं।

भूरसिंह—बूँदी-नरेश की क्या ताव है, जो अम्बरेश का सामना करने का साहस भी कर सकें। महाराज जगतसिंह का नाम सुनकर ही न काँप जाएं तो बात ही क्या। आएं न वे स्वयंवर में रूपनगर ?

मौकमसिंह—हाड़ा, युद्ध और कम्पन ! असम्भव !! हाड़ाओं में अपार साहस होता है, ठाकुर साहब ! आप अपनी कहिये !! हम तो युद्ध में हारते हुए भी कभी हिम्मत नहीं हारते। यदि वे घातक रूप से घायल न हो जाते, तो स्वयंवर-युद्ध में उनका सम्मिलित होना तो मानो अनिवार्य ही था।

भूरसिंह—आपने युद्ध से बचने का ढंग खूब निकाल लिया है। अम्बरेश के बराबर का मन्सब मिल गया है न ! वीरता द्वारा तो अपने से प्रबल वीर के प्रति गाड़ी चलेगी नहीं। चलो यों ही कुछ दिन घसीट लें।

मौकमसिंह—आप सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं ठाकुर साहब, देखिये !

भूरसिंह—देखिये क्या ! आगे बढ़ रहे हैं तो बढ़ेंगे ही। हमारे विकास को रोक ही कौन सकता है ? ईर्ष्या होती है तो बूँदी महाराव को लाइये स्वयंवर युद्ध में। ताकि दुनिया देख ले कि हाड़ा तलवार के धनी हैं या केवल बातों के।

मौकमसिंह—हाड़ा तो मैं भी हूँ और मेरे हाथ में भी तलवार है, उधर आप स्वयं भी एक वीर हैं। उठाइये न तलवार ! अभी यहीं निर्णय हो जायगा।

भूरसिंह—आइये ! यहाँ आप से डरता ही कौन है ? हम भी तो राजपूत हैं !

इसके पश्चात् तत्काल दोनों वीर अपनी-अपनी तलवारों को म्यान से बाहर खींचकर परस्पर युद्ध करने को तत्पर हो जाते हैं। महाराज उठकर

दोनों को पकड़कर पृथक् करते हैं और दोनों के क्रोध को शान्त कराते हैं। दोनों यथावत् हो जाते हैं और फिर वार्ता-क्रम चालू हो जाता है।

अम्बरेश—इस प्रकार आप लोगों के लिये हाथ दिखाने का समय अभी नहीं आया है, स्वयंवर युद्ध के पश्चात् आयेगा। हमारी प्रबल इच्छा तो यही है कि महाराव बूँदी स्वयंवर में अवश्य सम्मिलित हों; जिससे यह समस्या सुलझ जाय। रहा फतहखाँ के अपराध का प्रश्न, सो हम लोगों का पारस्परिक अविश्वास होने के कारण यह मामला सम्राट् के सम्मुख उपस्थित कर दिया जायगा।

भूरसिंह—क्या चाम की भी कहीं चला करती है? मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि बूँदी-धनी हमारे प्रभु के सामने कभी आने का साहस ही नहीं कर सकते—न स्वयंवर में और न उसके आगे-पीछे।

मौकमसिंह—वे स्वस्थ होते ही आयेंगे। तुम्हारे महाराज चाहे साहस छोड़ दें पर वे कदापि नहीं हट सकते। इस बात की शर्त रही। रहा फतह खाँ के अपराध का मामला, सो उसे किसी भी न्यायालय में ले जाना नहीं पड़ेगा। श्रीमान् के विचार जानने की इच्छा थी, अब उसका हल हाड़ा तलवार स्वयं ही निकाल लेगी।

भूरसिंह—तो फिर शर्त रही।

मौकमसिंह—क्यों नहीं, अवश्य।

अम्बरेश—क्या-क्या वस्तुयें हैं आप लोगों के पास अपनी-अपनी शर्त के प्रमाण में।

भूरसिंह—मेरा सब्ज़ा घोड़ा, अन्नदाता!

मौकमसिंह—मेरी यह तलवार, श्रीमान्!

अम्बरेश—किन्तु आपकी तलवार का मूल्य तो उस घोड़े के मूल्य के बराबर नहीं। यदि महाराव हार गये या लड़ने न आये तो हम ही टोटे में रहे न!

मौकमसिंह—हाड़ा क्षत्रिय हैं। आपके समान मुग़लों के पास रहकर

व्यापारी नहीं बने। हाड़ा-तलवार का मूल्य घोड़ा तो क्या उसके स्वामी की समस्त सम्पत्ति भी नहीं है, श्रीमान्! आप इस बात की चिन्ता न करें।

अम्बरेश—आप भी सीमा से परे जा चुके हैं; यदि कहीं करना उतना ही सरल होता, जितना कि कहना तो क्या-क्या न हो जाता?

मौकमसिंह—हाड़ा करता अधिक है कहता बहुत कम है। हाथ कंगन को आरसी क्या है? स्वयं देख ही लेंगे, श्रीमान्!

अम्बरेश—खैर, आपकी तलवार ही हमारी धरोहर सही। पहले छत्रसाल जी का पौरुष देखेंगे और फिर देखेंगे आपका। यदि हाड़ा तलवार के अभिमानी इन्द्रगढ़ सरदार की, वचन के अनुसार वीरता प्रकट न हुई, तो यह तलवार भविष्य की आने वाले सन्तान के देखने के लिए प्रमाणस्वरूप प्रदर्शनी-गृह में आमेर रक्खी जायगी। यह याद रखिये, राव साहब!

इस चुनौती के साथ प्रस्तुत वार्तालाप समाप्त हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

ज्येष्ठ मास की गर्मी के दिन हैं। रेगिस्तानी तप्त बालू पर बसा हुआ राजस्थान का उर्वरा भूमि से पृथक् सा हुआ होता रूपनगर नामक शहर, संसार के प्रत्येक पदार्थ के एकाकी रूप की घोषणा कर रहा है। अभी कठिनता से दिन के ग्यारह बजे का समय हुआ होगा, तो भी ऊपर और नीचे का सारा वातावरण काफी गर्म हो गया है। यात्रियों के पैर गर्मी में तप्त रेत के कारण जलने लगे हैं और सिर लगा है भिन्नाने गर्म धूप और गर्म हवा के कारण। जिनके पैरों में पादुकायें हैं वे भी तप्त बालू का लोहा मान गये हैं। यात्रियों ने यात्रा बन्द करके, घने वृक्षों की छाया में दोपहरी भर विश्राम करने का निश्चय कर तदार्थ डेरा लगा दिया है। गर्मी के कारण नगर के अन्दर और बाहर, सड़कों और मार्गों के यातायात और चहल-पहल में कमी आ गई है। प्रायः लोग अपने-अपने घरों में अथवा निवास-स्थानों पर, दोपहरी विरमाने के लिए चले गये हैं। कुछ धनाढ्य व्यक्तियों ने तो भोजन आदि से निवृत्त होकर सुन्दर पर्यंकों पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया है। कुछ ताश या शतरंज से मन बहला कर अपने समय को काट रहे हैं। बिक्री का समय न होने के कारण दुकानदार अपनी दुकानों की किवाड़ों को आधी खुली हुई छोड़कर बिक्री की ओर से निश्चिंत हो, अपनी गद्दियों पर बैठे-बैठे ही नींद के झोंके ले रहे हैं। वे बेचारे लालच के मारे न सो ही सकते हैं और न जाग ही सकते हैं। अर्थ-

लालसा ने उनकी साँप-छछून्दर की सी दशा कर रखी है।

पाठक! आप अनुमान लगाते होंगे कि ऐसी कठिन गर्मी में शायद मनुष्य के क्या प्रकृति पर्यन्त के कार्य-कलाप भी बन्द हो गये होंगे; किन्तु ऐसी बात नहीं है। इस समय भी शहर के बाहर एक चौरस भूमि में सहस्रों मनुष्य-मूर्त्तियाँ कार्य में संलग्न दिखाई दे रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि ये मनुष्य-मूर्त्तियां धातु या पत्थर के बने कलयन्त्र हैं जो गर्मी और सर्दी को अनुभव ही नहीं करते।

पाठकवर्ग! आश्चर्य का कोई कारण नहीं है। इस भारत देश में जहाँ कि धन का विभाजन मानव-समाज में उपयुक्त अथवा समुचित रीति से नहीं हुआ है, लाखों ऐसे निर्धन मनुष्य मिल जायँगे, जिन्होंने अपने मानव-शरीर को आपत्तियाँ सह-सहकर इतना कठोर बना लिया है कि लोह-यंत्रवत् धूप, शीत, वर्षा आदि अवरोधक शक्तियों की परवाह न करके अपने कार्य-क्षेत्र में इस प्रकार बढ़े चले जा रहे हैं, मानो इन पर वे कोई प्रभाव ही उत्पन्न नहीं करते; फिर भी भाग्य की कुछ उन पर ऐसी मार है कि जहाँ निकम्मे और आलसी केवल खाते ही नहीं अपितु खाद्य-पदार्थ को बिगाड़ते भी हैं, वहाँ उन कर्मवीरों को दिन में दो बार भोजन भी प्राप्त नहीं होता। अस्तु, रूपनगर के निकट, एक चौरस भूमि को समतल करके उसमें एक बड़ा समरागंण अथवा अखाड़ा बनाया जा रहा है। उसी के निर्माण के लिए इस दोपहरी में कार्य करने वाले मनुष्यों की मदद लगी हुई है। दोपहरी में कार्य करने से तात्पर्य यह है कि राजाज्ञा के अनुसार, रातदिन कार्य करके, इस अखाड़े के निर्माण का काम शीघ्रातिशीघ्र पूरा हो जायगा। क्योंकि आज से राजकन्याओं के स्वयंवर युद्ध के केवल पाँच दिन ही शेष रह गये हैं किन्तु तत्सम्बन्धी कार्य अभी बहुत कुछ शेष हैं। शायद दो-एक दिन के पश्चात् आमंत्रित युवक वीर तथा राजे-महाराजे अपने-अपने भाग्य की 'प्रबल-परीक्षा' के लिए आशार्थी बनकर आने आरम्भ हो जायँगे। इसलिए इस

उत्सव का प्रबन्ध वयोवद्ध श्री हरीहर पारीक को सौंपा गया है। महाराज को पारीक जी में विशेष रूप से श्रद्धा है और है उनके कार्यों पर पूर्ण विश्वास। श्री पारीक जी भी अपने कर्त्तव्य का सच्चे हृदय से प्रतिपादन किया करते हैं। वे राज-परिवार के अन्तरंग तथा गम्भीर विषयों के परामर्श-दाता हैं। राज्य-सम्बन्धी ऐसी कोई गुप्त बात नहीं होगी, जिससे पारीक जी का विशेष परिचय न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री पारीक जी राज्य में एक महत्वशील व्यक्ति हैं। पारीक जी ने अखाड़े के निर्माण-कार्य को शीघ्र समाप्त कर देने के विचार से मज़दूरों की दोहरी टोलियाँ (Double Shift) कार्य में जुटा रक्खी हैं जो रात-दिन काम करके उसे शीघ्र पूरा कर देना चाहती हैं।

यह हुई बाहर की व्यवस्था। अब अन्दर के प्रबन्ध पर भी ध्यान देना चाहिए। रनवास के अन्दर भी भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद की सामग्रियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। जिस प्रकार से उत्सवों के अवसर पर राजमहल, झाड़-फानूस, बन्दनवार, धर्मसिद्धान्त (Mottos) रंगबिरंगी चित्रकारियाँ तथा भाँति-भाँति के प्रकाश, जलस्रोत और शीशों की नक्काशी अथवा पत्थरतराशी के कामों से सजाये जाया करते हैं, उसी प्रकार रूपनगर के राजमहल भी समस्त सम्भव प्रकार से सुसज्जित किये जा रहे हैं। नगर के प्रत्येक घर में मंगलाचार और बधावे हो रहे हैं। राजा और प्रजा के प्रस्तुत प्रसंग से सम्बन्धित सभी स्त्री पुरुष प्रसन्न हैं और सभी सम्भव प्रकार के आमोद-प्रमोद में संलग्न हो रहे हैं। इस सारे हर्षपूर्ण वातावरण में एक हृदय ऐसा भी है जो समस्त आमोद-प्रमोद और चहल-पहल का केन्द्र होते हुए भी इसके विरुद्ध अत्यन्त दुःखी है। यह परितप्त-हृदय राजकुमारी किरणमयी का है जो अपनी अट्टालिका पर एकान्त में चिन्तामग्न बैठी है। उसकी चिंता और व्यथा का कारण यह है कि उसके चित-चोर बून्दी-नरेश श्री छत्रसाल जी हाड़ा के नाहर-आखेट में बुरी तरह घायल हो जाने के कारण, उनकी स्वयंवर युद्ध में सम्मिलित

होने की सम्भावना नहीं रही है जिसके कारण उसकी आशा एवं आकांक्षाओं का अँकुर अपनी वृद्धि एवं विकास के साधन तथा क्षेत्र न देख, उत्पत्ति से पूर्व ही संकुचित होकर कुम्हलाया जा रहा है। उसका यह दृढ़ संकल्प है कि वह स्वयंवर-संघर्ष के फलस्वरूप अन्य किसी व्यक्ति से विजित होकर भी, उसे वरण किये विना ही प्राण त्याग कर देगी। क्योंकि उसने एक सच्ची क्षत्रिया होने के नाते मन, वचन और अन्तःकरण से बूंदी-नरेश को ही अपना पति अंगीकार कर लिया है। यदि विधाता ने उसे किसी दूसरे को सौंपने का उपक्रम किया तो इस क्षत्रिया का पतिव्रत भंग होने के कारण उसका प्राण-त्याग अवश्यम्भावी है। उसके अपने विचार से संकल्प में असफल होकर जीवन पर्यन्त उसके दुष्परिणाम को भोगते रहने की अपेक्षा पतन-संबन्धी प्रदर्शन से पूर्व ही जीवन की समाप्ति अधिक उत्तम है। वर्त्तमान परिस्थितियों में व्रत रक्षण असंभव प्रतीत होता है। इसीलिए स्वयंवर से पूर्व ही प्राण त्याग करना एकमात्र निश्चय तथा कर्तव्य सा बन गया है। यही कारण है कि किसी भी प्रकार का आमोद-प्रमोद उसको सुरुचिकर नहीं लग रहा। उसकी दशा ठीक उस शूली पर चढ़ने वाले व्यक्ति के समान हो रही है जिसका कष्ट दर्शकों की चहल-पहल तथा जनता के प्रदर्शन से और भी अधिक बढ़ जाया करता है। व्यथित हृदय होने के कारण स्वच्छ जल का सरोवर भी महा भयंकर अग्निकुण्ड सा लग रहा है और उसमें स्नान करना मानो विशाल अग्नि की भयंकर लपटों में पड़कर परितप्त होना है। राजमहल का आनन्द उसे रौरव नर्क की घोर यंत्रणा के तुल्य कटु तथा दुःखदायी उद्भासित हो रहा है। जीवन से ऊब कर कभी वह अटारी पर चढ़ जाती है और कभी नीचे उतर आती है। हर्ष और शोक का, दिन-रात्रि के सदृश परिवर्तन का सिद्धान्त, अपनी दयनीय दशा को देखकर उसे थोथा सा जान पड़ रहा है।

संसार की रहस्यमय गति को समझने में असमर्थ होकर अर्द्धविक्षिप्त

की सी दशा में वह अटारी में बिछे हुये पलंग पर पड़ रही और कुछ समय के लिए चेतना-विहीन हो गई। उसी अवस्था में उससे मिलने के लिए उसकी अभिन्न हृदय-सखी राजबाला वहाँ आ पहुँची और उसे अचेत पाकर होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। चेतनता लाभ करके दुखित-हृदय किरण ने सखी को प्रसन्न-वदन देखकर बड़ा आश्चर्य अनुभव किया। इसके साथ-साथ रोष एवं अरुचि के भावों ने भी उसे उसकी ओर से उदासीन बना दिया। कारण कि सखी की प्रसन्नता को उसने अपनी अवस्था अवगति पर उपहास मात्र ही समझा। उस समय उसकी यही इच्छा हुई, कि राजबाला उसे वहाँ अकेली छोड़कर चली जाय तो अच्छा हो। पाठक! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। मनुष्य की कुछ अवस्थायें ऐसी होती हैं, जिनमें वह एकान्तवास की इच्छा से परमप्रिय स्वजनों के दर्शन तथा सामीप्य में भी अरुचि अनुभव किया करता है। राजकुमारी किरण भी उस समय इसी श्रेणी को प्राप्त होकर राजबाला को अपने पास से खिसकाने के लिए मुंह फुलाकर निम्न प्रकार से रूक्ष वार्तालाप करने लगी।

किरण—इस समय मुझे किसी का पास रहना अच्छा नहीं लगता, बहन! क्या मुझे अकेली छोड़ने की कृपा करोगी?

राजबाला—मेरे यहाँ आने पर अरुचि प्रकट न कीजिए, कुमारी! मैं अपना या दूसरे व्यक्ति का समय खराब करने के लिए किसी के पास नहीं जाया करती।

किरण—तो फिर चक्करदार बातें न कर अपने मतलब की बात कहो न?

राजबाला—जब मैं अपने मतलब से आई ही नहीं, तो अपने मतलब की बात कैसे करूँ? मैं तो इस समय केवल मित्रों के मतलब से घूम रही हूँ।

किरण—यह क्या रहस्यमय बात करती हो जिसका कोई भी भाग समझ में नहीं आता।

राजबाला—मैंने तो अभी कोई रहस्यमय बात की ही नहीं। यदि रहस्य की बात सुनने ही की इच्छा है तो वैसा ही प्रसंग छेड़ा जाय।

किरण—तो फिर मुझे यहाँ किस अभिप्राय से दुखी कर रही हो ?

राजबाला—दुख-सुख का दाता कर्म तथा भाग्य होता है, मनुष्य नहीं।

किरण—भाग्य से ही तुम मेरे जले पर नमक छिड़कने आई हो न ?

राजबाला—यह लो देखो तो, यह नमक है कि मरहम ?

इतना कहकर राजबाला ने अपनी चोली के अन्दर से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर राजकुमारी किरण के हाथ में दे दिया। राजकुमारी किरण महाराव छत्रसाल की लिखत को देखकर तत्काल उस लिफ़ाफ़े को खोल कर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

"सुभगे !

महत्वपूर्ण कार्यक्रम तथा विचित्र समस्याएँ सामने हैं। उनका सुलझाना और उनके विषय में कर्तव्य निर्णय करना, उस समय तक, जब तक कि हितैषी मित्रों से उन पर विचार-विनिमय न कर लिया जाय, सुहितकर प्रतीत नहीं होता। इसी कारण-वश गम्भीर विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए गुप्त मिलन का आयोजन करके साधुवेष धारण कर तुम्हारे बाग में डेरा लगाया है। यदि मिल कर नेत्रों को आनन्द प्रदान करें तो अति कृपा होगी।

—छत्रसाल"

बूंदी-नरेश के आगमन का समाचार पाकर कुमारी किरण-मयी का हृदय वास्तव में हर्ष से खिल उठा। उसने अपनी सखी से अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगी। आनन्द की अधिकता के कारण अपनी सखी की उपस्थिति का विचार न करके

पत्र को बार-बार अपने हृदय से लगाने लगी। इस हर्ष की अतिरेकता का एक विशेष कारण यह भी था कि उसके उस मस्तिष्क को, जो इन समस्याओं के हल सोचने में स्वयमेव असमर्थ सिद्ध हो रहा था, अब कम से कम बूंदी-नरेश जैसे चतुर हितैषी स्वजन की प्रेरणा प्राप्त हो जायगी। उनकी सहायता और परामर्श के द्वारा अपने भविष्य का मार्ग निर्धारित कर वह अपना कार्यक्रम बनाने में अवश्य सफल हो जायगी। कारण कि वर्तमान अवस्था में अन्य किसी स्वजन के साथ विचार-विनिमय सफल सिद्ध नहीं हो सकता था।

इन्हीं सभी बातों पर विचार करके अत्यन्त हर्ष के साथ वह तत्काल बाग जाने की तैयारी करने लगी। स्नान-ध्यान करके, शरीर पर तेल, फुलेल तथा सुगन्धित द्रव्यों का मर्दन कराया। इसके पश्चात् सुन्दर वस्त्राभूषण तथा अलंकार धारण किये। फिर माता की आज्ञा प्राप्त करके, पालकी तैयार कराई और चार-पांच विश्वस्त सखियों के साथ उसमें बैठकर बाग को प्रस्थान कर दिया। बाग में पहुँचकर चारों द्वारों पर पहरा देने के लिये चारों सखियों को नियुक्त कर राजबाला को साथ लेकर उसने बाग में टहलना आरम्भ कर दिया।

बाग में कहीं बूँदी-नरेश महाराव छत्रसाल जी को न देख उसे बड़ी चिन्ता हुई। एक वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति तो अवश्य बैठा है किन्तु वह तो बहुत साधारण सा मनुष्य जान पड़ता है। महाराज छत्रसाल के महान् व्यक्तित्व का उसमें सादृश्य कहाँ से आया। कहाँ राजा भोज और कहां कंगला तेली।

वह सोचने लगी कि शायद यह सामान्य वृद्ध संन्यासी कोई महाराज का संदेश-वाहक हो और उसे आगे भेजकर महाराव कहीं अन्यत्र ठहर गये हों। कारण कि इस व्यक्ति की आकृति ऐसी सामान्य है कि इसके बूँदी-नरेश होने का किसी को अनुमान हो ही नहीं सकता। सिवाय बूँदी-पति के और किसी व्यक्ति के सम्मुख जाना उसके लिये व्यवहार से

बाहर की बात थी, अतः वह वहीं ठिटक गई है। इसी समय राजबाला आकर उसका कन्धा पकड़कर हिलाती हुई कहने लगी—

"आप यहाँ कैसे ठिठक रही हैं राजकुमारी! महाराव से क्या संकोच?"

"मुझे किस के पास लेजा रही है? यहाँ बूंदी-नरेश कहां हैं?"

"वे उस वृक्ष के नीचे बूँदी-नरेश ही तो बैठे हैं, पहचानती नहीं?"

"मेरे साथ ठिठोली करना उचित नहीं। वे बूँदी-नरेश हैं?"

"नहीं मैं ठिठोली नहीं करती। वस्तुतः ये ही बून्दी-नरेश हैं। मुझे भी पहले-पहल पहचानने में ऐसा ही भ्रम हुआ था कि यह वृद्ध पुरुष भी कहीं वीर छत्रसाल हो सकते हैं?"

"क्या मैंने उन्हें देखा नहीं है जो मुझे धोखा दे रही है?"

"नहीं मैं झूठ नहीं कहती और न धोखा ही देती हूँ। ये वास्तव में बूँदी-नरेश छत्रसाल जी हैं। जैसे अर्जुन ने वृहन्नला का सफल रूप बनाने में दक्षता दिखाई थी, उसी प्रकार की दक्षता आज बूँदी-पति ने वेश बदलने में दिखाई है।"

"यदि ऐसा है तो पहले इनसे मेरी अँगूठी माँग लाओ, मैं वहाँ तब चलूँगी।"

'बहुत अच्छा' कह कर राजबाला संन्यासी के निकट गई और राजकुमारी की सारी आपत्ति कह सुनाई। और यह भी प्रकट किया कि मेरे कथन की सत्यता के निश्चय के लिये कुमारी ने अँगूठी देखनी चाही है।

संन्यासी ने यह सुनकर मुस्कराते हुए अँगूठी निकालकर राजबाला को दे दी, जिसे लेकर राजबाला राजकुमारी के निकट पहुँच गई। राजकुमारी को अँगूठी देखकर विश्वास हो गया और वह अपनी सखी को साथ लिये संन्यासी महोदय के निकट पहुँच गई। साक्षात्

होने पर प्रणाम के अनन्तर उसने भेंट का थाल महात्मा के सम्मुख रख दिया।

उसे देखकर बूंदी-नरेश बड़े संकोच में पड़ गये। कारण कि वे क्वारी कन्या के हाथ का भोजन नहीं किया करते थे और दान-दक्षिणा लेनी क्षत्रिय के लिये शास्त्रानुसार विर्वाजत मानते थे। उनको संकुचित देखकर राजबाला ने कहा—

"महाराव! सेवा-सत्कार ग्रहण कीजिये न, संकोच क्यों कररहे हो?"

"लेने में इन्कार तो कुछ नहीं किन्तु उपवास के कारण यह व्यर्थ हो जायेंगे। इनका यहां क्या उपयोग हो सकेगा?"

"उपवास की समाप्ति पर इसका उचित प्रयोग कर सकते हैं भगवन्! यह बिगड़ने वाले पदार्थ नहीं हैं।"

"यदि यही इच्छा है तो यहां रख दो। तुम्हारे आतिथ्य-सत्कार को ठुकराने की तो हिम्मत हो ही नहीं सकती।"

उसी समय राजकुमारी ने संन्यासी की दाईं भुजा पर उनका नाम खुदा हुआ 'बूंदी-नरेश श्री छत्रसाल' देख लिया। अब तो उसका समस्त सन्देह दूर हो गया और उसने अपना आंचल खींचकर कुछ अधिक नीचा कर लिया।

राजबाला बड़ी चतुर तथा सयानी सखी होने के कारण उसके मनोभावों को ताड़ गई और पालकी तैयार कराने के बहाने उनको अकेला छोड़कर वहाँ से खिसक गई। राजकुमारी उसके जाने के पश्चात् एकान्त में एक पुरुष के निकट रहने पर बड़ी व्यग्रता अनुभव करने लगी। उसका हृदय भय, संकोच और लज्जा से धड़कने लगा तथा शरीर पसीने से तरबतर यानी पानी-पानी हो गया। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो वह शर्म से पृथ्वी में गड़ी जा रही है। आज तक किसी पुरुष के निकट एकान्त में ठहरने का अभ्यास न होने के कारण कुछ भयपूर्ण झिझक से उसका श्वास तेज़ चलने लगा और लगा दम अन्दर-

ही अन्दर घुटने। उसने महाराज से विदा लेकर वहां से चले जाने का भी विचार किया, किन्तु विदा माँगना तो दूर रहा वह इतना भी प्रयास न कर सकी कि एक शब्द भी मुँह से निकाले। शरीर भी इतना भारी प्रतीत होने लगा कि उसमें वहाँ से चले जाने की सामर्थ्य भी न रही। अतः वहीं ठहर कर वार्तालाप करने में ही अपना लाभ देख, वह मूर्त्तिवत् निश्चल रूप से भूमि में गड़कर उसको कुरेदती रही और सोचती रही कोई ढंग ऐसे प्रसंग के प्रस्तुत करने के लिए जिससे वार्तालाप अवश्यंभावी हो जाय। संन्यासी महोदय की भी यही दशा हुई। उन्हें भी स्त्री-सम्पर्क में न रहने के कारण इस एकान्त में स्त्री के समीप ठहरने में बड़ी आत्मग्लानि अनुभव हुई। किन्तु जब कार्यवश बुला ही लिया है तो केवल न बोलने के कारण तो वह कार्य बिना सिद्ध किये बिगाड़ना नहीं चाहिये। यही सोचकर उन्होंने पहल स्वरूप पारस्परिक वार्तालाप का विषय तथा प्रसंग सोचकर बड़े सुन्दर, शान्त एवं मृदु स्वर में निम्न प्रकार से उसका प्रकटीकरण आरम्भ किया :—

"राजकुमारी, वर्तमान विपरीत परिस्थिति में, जिससे जीवन का अस्तित्व संदिग्ध है, मैंने यही उचित समझा कि एक बार गुप्त रूप से एकान्त में मिल लूँ। यद्यपि यह क्रिया उपेक्षाजनक है तो भी विवश होकर इसे अपनाना पड़ा, इसी विचार से यह कष्ट दिया गया। अतः क्षमा प्रार्थना है।"

"क्षमा का नाम लेकर लज्जित न करें श्रीमान्! मैं जीवन-दुखिया स्वयं यही चाहती थी।"

"जीवन से दुखी होने की आप को क्या आवश्यकता है? आप संसार का प्रकाश हैं। आपके सदृश सौन्दर्य-प्रतिमा अथवा नारी-जाति में कौस्तुभमणि को प्राप्त करने के लिए सहस्त्रों उत्तम से उत्तम तथा योग्य से योग्य व्यक्ति तन-मन-धन आदि सर्वस्व निछावर करने के लिए

तैयार हो जायँगे। चन्द्र की सर्वत्र चाहना होती है।"

"किन्तु इस क्षत्रिया-हृदय का तो यह दृढ़ संकल्प है कि प्राण त्याग देना स्वीकार है, किन्तु बून्दी-नरेश श्री छत्रसाल जी के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष को अपनाना स्वीकार नहीं। ऐसी दशा में ये अपमान-जनक बातें...?" नेत्र सजल हो जाते हैं।

"किन्तु नाहराखेट में स्वयं आखेट हो जाने के कारण मैंने इस विश्वास को सन्देह में परिवर्तित कर दिया है। इस समय यहाँ मिलने का प्रधानतया कारण भी यही है कि मैं तुम्हें अपनी त्याग-सम्बन्धी आंतरिक इच्छा से अवगत कर दूँ।"

"मिलन को तो मैं विशेष अनुकम्पा समझती हूँ, श्रीमान्! किन्तु यह त्याग...।"

"अर्थात् मेरी प्रबल इच्छा यह है कि यदि स्वयंवर के प्रतिफल स्वरूप आप किसी अन्य बड़भागी की जीवन-संगिनी बन जायँ, तो इस अभागे को निस्संकोच रूप से भूलकर अपने नवनिर्मित जीवन में प्रसन्न रह सकें और मेरी तरफ की किसी बात की स्मृति को मस्तिष्क में लाकर अपने हृदय को कष्ट न दें। प्रत्येक अवस्था में आपकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है।"

(फिर अश्रु-वर्षा करती हुई भर्राए कण्ठ से) "यह मेरे ऊपर घोर अन्याय है श्रीमान्! क्या आप इस क्षत्रिय बाला के सत की परीक्षा ले रहे हैं? क्षत्रिय होकर यह नहीं जानते कि एक क्षत्रिय-वीरांगना का हृदय केवल एक ही व्यक्ति को ग्रहण करता है, दूसरे को नहीं, तदार्थ चाहे कोई देवता भी चेष्टाशील क्यों न हो जाय।"

"जानता सब कुछ हूँ राजकुमारी किन्तु इस विषम परिस्थिति में इस हठ को किसी प्रकार से किञ्चित मात्र भी लाभदायक नहीं पाता।"

"क्या मर्यादा की रक्षा कम लाभ है?"

'इतने बड़े त्याग द्वारा यह मर्यादा की रक्षा ?"

"यदि इससे भी अधिक त्याग करना पड़े तो भी परवाह नहीं, मेरी यह अटल प्रतिज्ञा है कि प्राण भले ही चले जायँ, किन्तु मेरा यह निश्चय नहीं बदला जायगा।"

"किन्तु मेरी इच्छा है कि आप सदृश अनुपम दिव्य पुष्प जीवन धारण करके चिर विकास को प्राप्त हों।"

"ऐसा तभी हो सकता है जब श्रीमान् स्वयंवर-विजय कर दासी को प्राप्त कर लें। अन्यथा···।"

"अन्यथा आप अपना प्राण त्याग कर देंगी। क्यों यही ना, और कुछ ?"

"हाँ निश्चय रूप से यही और यदि ऐसा निश्चय हो गया तो स्वयंवर से पूर्व ही। उसके लिए श्रीमान् की तरफ से आज्ञा इसी समय प्राप्त करना चाहती हूँ।"

"यह कि मैं स्वयंवर-संग्राम को विजय कर तुमको अवश्य प्राप्त कर लूँगा, क्यों ? किन्तु तुमको स्मरण रहे कि मेरी इस क्षतपूर्ण अस्वस्थता तथा दारुण रोग की दयनीय अवस्था में ऐसा विश्वास दिलाना भी असत्य सिद्ध हो सकता है।"

"तब फिर प्राण-रक्षा नितान्त असम्भव है।"

"पर तुम्हारे प्राणों की रक्षा के कार्य को मैं परम आवश्यक समझता हूँ जिसके लिए स्वयंवर-युद्ध में मनुष्य क्या इन्द्र तक से संग्राम करने को तैयार हूँ।"

"किन्तु ऐसी दशा में तो दासी श्रीमान् को स्वयंवर-युद्ध में भाग लेने का भी परामर्श नहीं दे सकती। क्योंकि क्षत-युक्त अवस्था में ऐसा प्रयास करना मानो मृत्यु को निमंत्रण देना है।"

"प्रेम मृत्यु से कहीं अधिक महान् है, देवी !"

"तो मुझे शान्तिपूर्वक प्राण त्याग करने दीजिए न देव।"

"तुम्हें क्यों ? प्रेमी तो मैं हूँ न तुम्हारा। तुम्हारे मुख-चन्द्र का चकोर, तुम्हारे रूप रूपी दीपक का पतंगा और तुम्हारे पराग-पूर्ण पुष्प का दिव्य भ्रमर। तुम्हें खोकर मैं इस संसार में किस प्रकार जीवित रह सकूँगा।"

"क्या मेरे प्रेम पर कोई सन्देह है देव ! और आप के बिना यह दासी कैसे जीवित रह सकती है ?"

"बलिदान-पूर्ण प्रेम पुरुष को ही उचित है। इस प्रकार का प्रेम पतंगा किया करता है, दीपक नहीं, चकोर करता है, चन्द्र नहीं, भ्रमर करता है, पुष्प नहीं। पुष्प, चन्द्र और दीपक तो जीवित रहकर प्रेम को परितुष्ट करने के लिए ही बनाये हैं भगवान् ने। और भ्रमर, चकोर और पतंग का कर्त्तव्य है उन पर प्राण देकर न्योछावर हो जाना।"

"मुझे यह उपहास अच्छा नहीं लगता श्रीमान् ! प्रेम दोतर्फा बलिदान चाहता है। यदि ऐसा नहीं तो प्रेम लँगड़ा है। कहा भी है—

आनन्द प्रेम में जभी, दो दिल हों बेकरार।
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।"

"अच्छा तो लीजिए। यह 'प्रबल-परीक्षा' का समय है।" यह कहकर राजकुमारी ने अपनी साड़ी में छिपी हुई कटार निकाल ली और अपने हृदय को उसका लक्ष्य बनाती हुई, ज्यों ही मारने को तैयार हुई कि झट से संन्यासी ने आगे बढ़कर कटार पकड़ उसे ऐसा करने से रोक लिया।

"इसकी तो इस समय कोई आवश्यकता नहीं ? ऐसा क्यों करने लगीं, कुमारी ?"

"आवश्यकता क्यों नहीं, जब यह प्रकट करना हो कि—

अंगारे हैं छिपे हृदय में, सर्द राख का नाम नहीं।
जलना या गलना है इसको, और दूसरा काम नहीं।"

"अच्छा, अच्छा ! आप अपने खञ्जर को म्यान में कीजिए। हम अपनी हार स्वीकार करते हैं।"

"बस, इतने ही निकले। इस ज़रा से प्रहार मात्र से हार स्वीकार।"

"हाँ, आप जीती रहें, हमें तो आपके द्वारा हार का प्रदान ही प्रिय है।"

"वह तो स्वयंवर-युद्ध का उपहार है, किन्तु, यहां तो उसका और ही आकार-प्रकार है।"

"नाथ की जीत के लिए दासी की हार और हार के लिए संहार निश्चित है।"

"यदि प्रेयसी की प्रसन्नता के लिए यह सम्भव एवं स-सार है तो तन-मन-धन और जन आदि सर्वस्व की बलि देकर यह सेवक उसके लिए भी तैयार है।"

"उस बलि से दोनों हार का उपहार प्राप्त कर जीते रह सकते हैं।"

"तो फिर ऐसी उत्तम योजना को शीघ्र प्रकट करके, हृदय की व्यग्रता को शान्त कीजिये न।"

"इसके अतिरिक्त दोनों की जीवन-रक्षा का मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता। शायद कोई और होगा भी नहीं।"

"तो फिर उसे स्पष्ट रूप से प्रकट कीजिये, योंही उत्सुकता बढ़ाने से क्या लाभ ?"

"कैसे कहूँ ? कहते हुये संकोच होता है और कुछ झिझक-सी लगती है तथा आती है साथ ही लज्जा। हे भगवान् मृत्यु दे···।"

"यदि मुझे स्वजन नहीं समझती तो न कहो, कोई बात नहीं।"

"मैं श्रीमान् को स्वजन नहीं समझती, तो···फिर इस प्रकार का व्यंग्य···?" यह कहकर फिर राजकुमारी अश्रु-प्रवाहित करती है। संन्यासी महोदय भी विचलित होते हैं।

"नहीं, नहीं, मेरा स्वजन से यह तात्पर्य है कि हम दोनों में किसी प्रकार का छिपाव नहीं होना चाहिये ।"

"अच्छा तो मुझे स्वयंवर से पूर्व ही पृथ्वीराज और संयोगिता की भांति···"

"पृथ्वीराज जिस प्रकार स्वयंवर से पूर्व ही संयोगिता को ले उड़े, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें स्वयंवर से पूर्व ले उड़ूं । क्यों, यही तात्पर्य है न राजनन्दिनी का ?"

"हाँ, इसमें हानि ही क्या है ? अर्जुन-सुभद्रा, कृष्ण-रुक्मिणी पृथ्वीराज-संयोगिता और···"

"ठीक है, किन्तु मैं इस प्रकार का प्रयास करना उचित नहीं समझता ।"

"यदि यह प्रकार अनुचित है तो पहले पूर्वजों ने इस अनियमित मार्ग को क्यों अपनाया था ?"

"समाज के आचार-विचार और मान-मर्यादा में समयानुसार परिवर्तन हुआ करते हैं । उस समय समाज में बहुपत्नीवाद, नहीं-नहीं बहुपतिवाद तक प्रचलित था । किन्तु आज इन बातों का नाम लेना तक बुरा समझा जाता है ।"

"तो फिर इसका तात्पर्य क्या समझूं ? श्रीमान् के हृदय-क्षेत्र में दासी के प्रेम-पौधे का शुष्कीकरण या कुछ और ?"

"प्रेम की अगम्यता प्रकट करने के पश्चात् भी यह शुष्कीकरण कैसा ?"

"तो फिर जीवन-रक्षा किस प्रकार से करेंगे श्रीमान् ?"

"मनुष्य कुछ नहीं कर सकता । केवल भगवान् का भरोसा करके स्वयंवर का फल देखने तक शान्ति रखनी चाहिये । यही मेरा परामर्श है । प्रत्येक व्यक्ति को सत्य, धर्म और पुरुषार्थ पर अवलम्बित होकर कार्य करना चाहिये और फल को छोड़ना चाहिये भाग्य या भगवान्

के ऊपर। इसके साथ ही जब तक किसी कार्य का परिणाम पूर्णरूप से प्रकट न हो जाय तब तक धैर्य और दृढ़ता को खोकर क्रूरता के भावों को हृदय में स्थान नहीं देना चाहिये। क्योंकि यह कार्य वीरोचित नहीं है।"

"क्या, इस तत्वज्ञान के बल पर परित्राण होना सम्भव है ?"

"अवश्य ! निरावलम्ब के अवलम्ब भाग्य और भगवान् ही हुआ करते हैं। अर्थात् जब सब सम्भव यत्न निष्फल हो जाते हैं तो ईश्वराराधना ही फलदायक होती है। किन्तु उसके लिये होनी चाहिये हृदय में पवित्रता और लग्न। जिन कार्यों के सम्पन्न करने में बड़ी से बड़ी भौतिक शक्तियाँ भी असफल हो पाईं, उनको आध्यात्मिक-शक्ति ने सम्भावना के विरुद्ध भी क्षणमात्र में ही ठीक कर डाला है। ऐसे उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।"

"तो श्रीमान् का आदेश मेरे लिये स्वयंवर-युद्ध का फल देखने तक शांत एवं निश्चिन्त रहने का है।"

"हाँ, निस्सन्देह ! और ईश्वर ने चाहा और तुम्हारा प्रेम तथा संकल्प सत्य हुआ तो फल भी अवश्य अनुकूल ही होगा।"

"धन्य हैं देव ! मैं अवश्य आपकी आज्ञा का पालन करूँगी।"

इसी समय राजबाला वहां आ उपस्थित हुई और कहने लगी—"कुमारी ! सायंकाल का समय हो गया है। मन्दिर में आरती हो रही है। अब घर लौट चलना चाहिये, नहीं तो माता जी चिन्तित होंगी। पालकी को तैयार करा आई हूँ, अब केवल उसमें आपके बैठने की ही देर है।" इसके पश्चात् संन्यासी महोदय की ओर मुड़कर बोली : "क्षमा करना भगवन् ! अब हम आपके शुभ आशीर्वाद सहित प्रस्थान की आज्ञा चाहेंगी, क्योंकि घर जाने में देर हो रही है।"

संन्यासी ने मुस्कराकर उन्हें विदा किया और दोनों सखियाँ प्रसन्न-वदन हो, महाराज को प्रणाम कर, पालकी की तरफ को बढ़ने लगीं।

मार्ग में किरणमयी ने, जो राजबाला के पीछे-पीछे जा रही है,बिना सखी को जताये कई बार मुड़-मुड़कर संन्यासी की ओर देखा है, बार-बार प्रणाम किया है औरकृपा बनाये रखने के लिये मार्मिक संकेत किया है। संन्यासी जी ने भी प्रत्येक प्रयास का प्रत्युत्तर ठीक उसी की गति की पुनरावृत्ति करते हुये उसी की भाँति दिया है और उस समय तक उसे एकटक देखते रहे हैं, जब तक कि वह पालकी में बैठकर चल नहीं दी और आँखों से ओझल नहीं हो गई।

बारहवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल का समय है। रूपनगर में आज एक महोत्सव का आयोजन हुआ है। नगर के बाहर एक विशाल समराँगरा अर्थात् अखाड़े के चारों तरफ तम्बू-डेरे तने हुए हैं। प्रत्येक राज्य के अधिनायक, शूर, सामन्त प्रदर्शनी में मनोरंजन के विचार से दर्शक के रूप में अथवा स्वयंवर-युद्ध में विजय-लाभ करने की आकांक्षा से सक्रिय भाग लेने के लिए आए हैं, और अपने-अपने डेरे डालकर ठहरे हुए हैं। बून्दी-नरेश छत्रसाल के अतिरिक्त समस्त रजवाड़े रूपनगर में आ गए हैं। बून्दीपति की अनुपस्थिति क्षम्य है; कारण कि सिंहाखेट में वे घातक रूप से घायल हो गये हैं। मैदान में प्रत्येक डेरे के इतस्ततः जन-मार्ग बने हुये हैं। इन मार्गों के दोनों किनारों पर वणिकों की विविध वस्तुओं की दुकानें लगी हुई हैं। चौपड़ के बाजार बनाकर उनको विशेष प्रकार से सजाया गया है। प्रत्येक नरेश के डेरे कनातों से घिरे हुये हैं जिन पर उनके धवल ध्वज फहरा रहे हैं। उन कनातों के इर्द-गिर्द उन नरेशों के सैनिकगण पहरा देते हुए घूम रहे हैं। वे सभी सैनिक सामयिक शस्त्रास्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित हैं। बाजार में दर्शक स्त्री-पुरुषों की भारी भीड़ लगी हुई है। एक तरफ अखाड़ा दर्शकों से घिरा हुआ परम शोभा को प्राप्त है और दूसरी ओर है वणिज-व्यापार का हृदय को प्रसन्न करने वाला कौतुहल। यद्यपि स्वयंवर-युद्ध के आरंभ होने का समय प्रातः दस बजे का है, तथापि प्रातः सात बजे से ही उत्तम स्थान

पाने के विचार से स्त्री-पुरुषों की अच्छी खासी भीड़ लग गई है। शायद ही कहीं कोई रिक्त स्थान शेष बचा हो। समरांगण चौतर्फा लोहे के तारों की बाड़ से घिरा हुआ है ताकि दर्शकों में से कोई वहाँ होकर अन्दर प्रवेश न कर सके। इस बाड़ के अन्दर की तरफ चारों ओर कुर्सियों की एक कतार है, जिस पर स्वयंवर में भाग लेने वाले आशार्थी (उम्मीदवार) शूरगण विराजमान हैं। उनमें बहुत से ऐसे महानुभाव हैं जो राजे-महाराजे, अमीर-उमरा, उच्च सेनाध्यक्ष तथा अन्य प्रकार से सामान्य सभा-मण्डलीय वीर योद्धा हैं और जो विशेष रूप से बल-पौरुष से युक्त होकर युद्ध-कार्य में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त रूपनगर के वे सैनिक भी यत्र-तत्र नियुक्त हैं, जिनका कर्त्तव्य एक सम्भ्रान्त सामन्त सेनानी की अध्यक्षता में हर प्रकार से आन्तरिक व्यवस्था को ठीक रखकर समरांगण की रक्षा करना है। चार मनुष्यों के साथ, उच्च श्रेणी के एक परम अनुभवी वीर सामरिक को जयाजय की घोषणा करने के लिए नियत किया गया है। समरांगण के चार द्वार हैं जिन पर सैनिकों के कड़े पहरे हैं। ये द्वार इतने चौड़े हैं कि दस घुड़-सवार उनमें होकर एक साथ बराबर-बराबर जा सकते हैं। चारों द्वारों के ऊपर चार सायबान बने हुये हैं, जिनमें स्त्री-दर्शकों के बैठने के लिए जालियाँ और चिकों से युक्त विशेष सुविधाजनक स्थान है। एक छज्जा भारत सम्राट् शाहजहाँ, उनकी बेगमों, शाहजादों और शाहजादियों के लिए सुरक्षित है और उसी प्रकार के सामने वाले एक दूसरे छज्जे पर रूपनगर के महाराज रूपसिंह जी, राजकुमार विक्रमसिंह, महारानी, राजकुमारी तथा अन्य निकट-सम्बन्धी जनों के लिये प्रतिष्ठित स्थान है। तारों की बाड़ के पीछे पैड़ियाँ इस प्रकार दक्षता के साथ बनाई गई हैं जिस प्रकार कि किसी सरकस के इतस्ततः आन्तरिक कौतुक दर्शनार्थ, दर्शकों के बैठने के लिए तख्तों की सीढ़ी-नुमा बैञ्चें बनाई जाती हैं। इस स्थान से समरांगण में होने वाला प्रत्येक दृश्य भली प्रकार से देखा जा

सकता है और कोई दर्शक किसी अन्य दर्शक के दर्शन-कार्य में रुकावट नहीं डाल सकता।

उक्त कथनानुसार प्रातःकाल से दर्शक-जन आ-आकर पूर्व निश्चित एवं व्यवस्थित स्थानों पर बैठने लगे हैं। ठीक दस बजे महाराजा रूप-नगर अपने पारिवारिक-जनों के साथ, जिनमें रानी, राजकुमार, राज-कुमारियाँ और महाराज से अन्यथा सम्बन्धित सज्जन सम्मिलित हैं, पधारे। उनके आते ही भाट, चारण एवं बन्दी-जन विरद बखानने लगे। महाराज के आने के पूर्व ही दर्शक-मण्डली यथास्थान बैठकर दृश्य के प्रति उत्सुकता प्रकट करने लगी है। आशार्थी योद्धागण भी एक-दो को छोड़कर सब अपने-अपने स्थानों पर आ गये हैं। महाराज रूपनगर के आने पर सब ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। महाराज के बैठने पर सब लोग बैठ गये। उसी समय छड़ीबरदारों के द्वारा 'बाअदब बामुलाहिज़ा होशियार' के रव के मध्य में भारत-सम्राट् की विशाल मंडली ने, उचित सम्मान के साथ सम्राट् शाहजहाँ को आगे करके, समरांगण में प्रवेश किया। रूपनगर-नरेश ने अपने स्थान से उतर कर, तथा कुछ दूर तक आगे जाकर, बड़े विनम्र भाव से भारत-सम्राट् का समुचित स्वागत-सत्कार किया। महाराज ने सम्राट् को समरांगण के प्रत्येक भाग में घुमाकर समस्त व्यवस्था को समझाते हुये, प्रत्येक दर्शनीय सामग्री को दिखलाया। सम्राट् के इस परिभ्रमण के अन्तरकाल में उनके स्वागतार्थ, समस्त उपस्थित जनता अदब के साथ, नतमस्तक हो, कर जोड़े मूर्तिवत् खड़ी रही। प्रत्येक वस्तु के निरीक्षण के पश्चात् भारत-सम्राट् अपने पूर्व निश्चित भव्यासन पर आसीन हुये। उनके अपने आसन पर विराजमान हो जाने के अनन्तर रूपनगर-महाराज भी पूर्ववत् स्व-स्थान पर आकर बैठ गये और सम्बन्धित कर्मचारियों को स्वयंवर की कार्य-वाही के श्रीगणेश करने का संकेत करने लगे। तत्काल समरांगण के प्रधान अधिकारी ने आगे बढ़कर युद्धारम्भ से पूर्व महाराज की तरफ से,

दोनों कुमारियों अर्थात् किरणमयी और ज्योतिमयी के, स्वयंवर-युद्ध की घोषणा करते हुये, पूर्व-निश्चित नियमों का उपस्थित जनता के समक्ष भले प्रकार से स्पष्टीकरण किया। उसने कहा—'प्रथम महाराज रूपनगर की तरफ से दो-दो योद्धा घुड़सवार समरांगण में प्रवेश करेंगे। उनके साथ दो-दो योद्धा आशार्थी अश्वारोही आकर तलवारों से युद्ध करते जायेंगे। प्रत्येक आशार्थी तथा अन्य योद्धा अपने प्रतिद्वन्द्वी को तलवार-युद्ध में हराते हुए घोड़े से गिराकर धराशायी करने की चेष्टा करेगा। किसी वीर का घायल होना या मर जाना उसकी पराजय का सूचक समझा जायगा। किसी भी कारणवश घोड़े से गिरकर भूमि तक पहुँचा हुआ व्यक्ति भी तत्काल पराजित घोषित कर दिया जायगा और प्रस्तुत स्वयंवर-युद्ध में भाग न ले सकेगा। पराजित व्यक्ति का स्थान, यदि वह पहलकर्ता या चुनौतीदाताओं में है, तो विजेता ग्रहण कर लेगा और अन्य नवागत वीर आकर, तथा उसकी चुनौती को स्वीकार करके, उसके साथ युद्ध करने में संलग्न हो जायेगा।

इस प्रकार अन्त में दो ही विजयी वीर रह जाएँगे। फिर वे दो विजेता भी परस्पर उसी प्रकार युद्ध करेंगे, जिसके फलस्वरूप प्रथम और द्वितीय का निर्णय होगा। प्रथम विजयी वीर ज्येष्ठ राजकुमारी किरणमयी द्वारा वर्णीत होगा और द्वितीय कनिष्ठा राजकुमारी ज्योतिमयी के द्वारा। यदि प्रथम चुनौती-दाता अर्थात् महाराज के प्रतिनिधि ही अन्त में विजयी हो गये तो उनको राजकुमारियों के वरण करने का अधिकार नहीं होगा, किन्तु रूपनगर महाराज स्वतन्त्रता पूर्वक जिसके साथ उनका विवाह करना चाहेंगे उसी के साथ राजकुमारियों का कन्यादान कर सकेंगे, जिसमें किसी को कोई आपत्ति न होगी।"

इस घोषणा के पश्चात् अधिकारी के संकेत से महाराज के पूर्व-निश्चित दो प्रतिनिधि वीर समराँगण में अवतरित् हो गये और आशा-

र्थियों को युद्ध के द्वारा स्वभाग्य निर्णय की चुनौती देने लगे। तत्काल उस चुनौती को बिगुल द्वारा घोषित कर दिया गया। प्रत्युत्तर-स्वरूप दो अश्वारोही वीर तत्काल आकर सम्राट् और महाराज का अभिवादन करते हुए, प्रतिद्वन्द्वियों से भिड़ गये। इस प्रकार से इस स्वयंवर-युद्ध का श्रीगणेश हुआ। प्रथम युद्ध में एक चुनौती-दाता और एक आशार्थी परास्त हुए। दूसरे संघर्ष (पारी) में महाराज का दूसरा चुनौती-दाता प्रतिनिधि भी परास्त हो गया। इसके पश्चात् बारी-बारी से योद्धागण लड़कर समर-भूमि में गिरते जाते और रण में पराजित घोषित कर, जीवित या मृतक, समर से बाहर कर दिए जाते, जिनका स्थान नये आशार्थी तत्काल आकर ग्रहण कर लेते। एक के पश्चात् एक, इस प्रकार सैंकड़ों ही वीर पराजित घोषित किये गये। बड़ी चहल-पहल के साथ इस प्रकार यह स्वयंवर-संग्राम दोपहर तक चलता रहा। सैंकड़ों मनचले आशार्थी वीर, अपनी विजय की आकाँक्षा को लेकर समराँगण में प्रविष्ट होते, किन्तु युद्ध में हार मानकर तथा पराजित होकर क्षेत्र से बाहर कर दिये जाते। कभी-कभी कोई चुनौती लेने वाला वीर विजयी होकर दूसरी पारी में स्वयं चुनौती-दाता बन जाता था। दोपहर तक युद्ध होने के पश्चात् यह देखा गया कि आशार्थी मण्डली में से इतने अधिक वीर पराजित होकर बाहर निकल गए हैं कि थोड़ी-सी कुर्सियों को छोड़कर अधिकतर खाली ही दृष्टिगोचर होने लगीं हैं। जब कोई वीर अपूर्व पराक्रम का कार्य करता अथवा किसी विशेष प्रकार का अद्भुत रण-कौशल दिखाता तो दर्शक-मण्डली ताली बजा-बजाकर, अपना प्रशंसा-सूचक भाव उसके प्रति प्रकट करती थी। युद्ध का दृश्य अत्यन्त रोचक और गम्भीर बन गया था। दोपहर तक के युद्ध में पाँच से अधिक वीर किसी योद्धा द्वारा परास्त नहीं हुए।

दोपहर के पश्चात् लगभग चार बजे श्याम-वर्ण के रण-वस्त्रों से

सुसज्जित, एक विशाल श्याम-वर्ण के अश्व पर सवार होकर एक वीर रण-क्षेत्र में अवतरित हुआ और निर्भय रूप से खाली खड़े हुये एक विजयी चुनौती-दाता योद्धा से समर में भिड़ गया। देखते ही देखते उस श्याम-वर्ण अश्वारोही वीर ने अपने प्रतिपक्षी को धराशायी कर दिया। वह श्याम-वर्ण से पराजित होने वाला वीर अब तक के युद्ध में सर्व-प्रथम घोषित किया जा चुका है और सब से अधिक वीरों को पराजित कर चुका है। जब ऐसे पराक्रमी योद्धा को श्यामवर्ण शूर ने हराया तो समस्त दर्शक-मण्डली की दृष्टि उस पर जा लगी और उसका हस्त-लाघव दर्शक-जनता में सार्वजनिक सराहना का विषय बन गया। उसके पश्चात् जो भी वीर उसके सामने आता वही उसकी सिद्धहस्तता और रण-कौतुकों से पराजित होकर भूमिशायी हो जाता। उसके इस प्रकार अपूर्व रण-कौशल तथा प्रचण्ड पराक्रम को देखकर समस्त उपस्थित वर्ग आश्चर्य-चकित होकर धन्य-धन्य पुकारने लगा। प्रत्येक व्यक्ति उस योद्धा का परिचय पाने के लिए उत्सुक होने लगा, किन्तु उसके आवरण के कारण अपने प्रयास में असफल रहा। उसके मुख को एक काले रंग का ऐसा मुख-पट ढके हुए है जिसके द्वारा यह पहचानना कठिन है कि यह परम साहसी और अद्वितीय योद्धा कौन है ? उसने आध घंटे के युद्ध में पचास योद्धाओं को धराशायी कर उन पर विजय प्राप्त कर ली है। उसके साहस और शौर्य की सर्वत्र सराहना हो रही है।

पाँच बजे के लगभग एक दूसरा वीर भी श्वेत-वर्ण के अश्व पर चढ़ कर उसी रंग के वस्त्र धारण कर तथा अपने मुख को श्वेत मुख-पट से ढककर समरांगण में आया और दूसरी श्रेणी के एक विजयी चुनौती-दाता से युद्ध करने लगा। यह भी श्याम-वर्ण वीर की भाँति प्रतिपक्षी योद्धाओं को निरन्तर पराजित करता रहा। ये दोनों वीर यदि युद्ध में तेज़ी न दिखाते तो पूर्व नियमानुसार यह संग्राम छः बजे तक चालू रहना चाहिये था; किन्तु साढ़े पाँच बजे के लगभग ही उक्त दोनों चुनौती-दाता वीरों को

छोड़कर उनके साथ द्वन्द्व के लिए कोई आशार्थी योद्धा युद्धार्थ आता दिखाई नहीं दिया। आशार्थी-मण्डली की कुर्सियाँ भी सब की सब खाली हो गई हैं। निरन्तर प्रतीक्षा करने के पश्चात् बाहर से भी चुनौती स्वीकार करने के लिये किसी वीर की रण में प्रवेश करने की आशा नहीं रही है। इस समय तक श्वेत अश्वारोही योद्धा ने पचास आशार्थी वीर धराशायी एवं पराजित कर दिये हैं और श्याम अश्वारोही वीर ने एक सौ सात शूरवीर। स्वयं रुहेले सरदार नवाब शेरशाह भी श्याम-वर्ण वीर के द्वारा घायल होकर इसी पराजित मण्डली में शामिल हो गये हैं। अब दस मिनट तक दोनों वीर योद्धा अल्प युद्ध-विराम की अवस्था में अन्य आशार्थी वीरों को रण के लिये निरन्तर चुनौती देते रहे, किन्तु उनकी इस चुनौती के फलस्वरूप भी जब कोई वीर युद्ध करने को तत्पर नहीं हुआ तो अन्त में सम्राट् और महाराज की आज्ञा से प्रधान अधिकारी ने इन्हीं दोनों वीरों को अन्तिम विजयी घोषित कर, निर्णायक युद्ध के लिये उपयुक्त पात्र होने का फैसला दे दिया।

उक्त निश्चय के अनुसार ये दोनों प्रलयंकारी वीर योद्धा इस निर्णायक संग्राम में संलग्न हुये और भीमवेग से एक-दूसरे पर आक्रमण कर प्रत्येक प्रकार के रण-कौतुक प्रकट करने लगे। उक्त दोनों महा-पराक्रमी वीर योद्धा विजय की आकांक्षा से आधे घण्टे तक युद्ध में रत रह, विचित्र-विचित्र प्रकार के रणकौशल तथा हाथ की फुर्ती दिखाकर दर्शकों से प्रशंसा तथा धन्यवाद प्राप्त करते रहे। इस निश्चय और विश्वास के साथ कि प्रस्तुत स्वयंवर-युद्ध के विजेता यही दोनों वीर हैं और राजकुमारी किरणमयी एवं ज्योतिमयी इन्हीं के गले में जयमाल डालेंगी, जनता के हृदय में उन दोनों ही वीरों के प्रति किञ्चित् सहानुभूति की सद्भावना उदित होने लगी है। रण-दृश्य की रहस्यमय प्रगति को देखकर किसी अदृश्य आपत्ति की आशंका से, इधर दोनों राजकुमारियों के हृदय भी धड़कने लग

गये हैं। भय-विह्वल, व्याकुल एवं चिन्तित-मना वे दोनों इन्हीं दोनों वीरों की जय-पराजय के परिणामानुसार अपने-अपने भाग्य के अच्छे-बुरे होने का अनुमान लगाने लगी हैं। बून्दी-नरेश की सहगामिनी होने की आशा के टूट जाने से, राजकुमारी किरणमयी की दशा अत्यन्त खराब होने लगी, कारण की रण-संलग्न उन दोनों वीरों में कोई सा योद्धा रोग-ग्रस्त छत्रसाल के सदृश प्रतीत नहीं होता है। इन दोनों का दो प्रबल हाथियों के समान भयंकर युद्ध यह प्रकट कर रहा है कि ये दोनों ही वीर पूर्णरूप से स्वस्थ और सर्वथा शक्ति-सम्पन्न हैं जबकि महाराज छत्रसाल निश्चित रूप से घायल, रुग्ण और रण के अयोग्य घोषित किये जा चुके हैं। सबसे ज्यादा परेशान उनको यही उत्सुकता कर रही है कि बल, वीर्य और पराक्रम में समान नाहरानुरूप ये दोनों अद्वितीय महाबली तथा वीर योद्धा कौन हैं? सहस्र-सहस्र कल्पना करने पर भी रणबाँकुरे उन दोनों प्रबल वीरों के विषय में कोई अनुमान सत्य सिद्ध होता नहीं दीखता। इन्हीं दोनों में से एक वीर विजयी होने पर किरणमयी का विधान विनियमित वर घोषित होने वाला है, जो कि होगा उसके हृदय को असह्य, सर्वथा नितान्त अवाञ्छित होने के कारण। उधर उसके प्रेम-पात्र महाराव छत्रसाल, जिनको कि वह तन-मन एवं प्राणादि सर्वस्व तक अर्पण करके पहले ही अपना प्रणायी बना चुकी है और जिनसे पृथक् होकर वह किसी दूसरे की पत्नी होने पर प्राण त्याग का संकल्प कर चुकी है, कहीं दूर अस्वस्थावस्था में अपनी जीवन-निधि के खोये जाने के कारण विरह पीड़ा से परितप्त पलंग पर पड़े पश्चात्ताप कर रहे होंगे। इस स्वयंवर-युद्ध का निर्णय छत्रसाल तथा स्वयं उसके लिये कितना भयानक तथा प्राणघातक सिद्ध होगा—यही कल्पना-जगत् का अनुमानित विचार रह-रहकर उसके हृदय का मर्दन तथा मन्थन कर रहा है। वे ही महाराव छत्रसाल, जो उसे हृदय की देवी, मान उसकी भगवती के सदृश मान्यता करते हैं, उसके वियोग में

क्या स्वप्राणों को रक्षित रख सकेंगे ? इस भ्रमात्मक स्थिति में, यह सारी बातें सोचकर किरणमयी को अपना भाग्य पूर्ण रूप से अन्धकारमय प्रतीत होने लगा, क्योंकि उसकी उज्ज्वलता उसे क्षमता और सम्भावना के वृत्त से बाहर की बात प्रतीत हुई। वह अपने मन में उस भूल को अनुभव करके महा दुखी हुई जो उसने स्वयंवर युद्ध का परिणाम पूर्ण-रूपेण घोषित होने पर्यन्त अपने प्राणों को सुरक्षित रखने के विषय में महाराव छत्रसाल को वचन देकर की थी। अब वह फिर उसी संकल्प को अपने हृदय में दोहरा रही है कि छत्रसाल जी के अति-रिक्त अन्य किसी सज्जन के पक्ष में उसको वरण करने की आज्ञा की घोषणा होते ही वह विषपान करके अपने जीवन को समाप्त कर देगी।

इसी प्रकार के विचारों में वह उस समय तक तल्लीन रही जब तक कि दर्शकों में बड़े ज़ोर से तालियाँ पीटनी आरम्भ नहीं कर दीं। तालियों की आवाज़ ने उसे स्वप्न की सी अवस्था से चेतन करके उसका ध्यान वस्तुस्थिति की ओर आकर्षित किया। उसने स्वयं अपने खुले हुए नेत्रों से देखा कि श्यामवर्ण अश्वारोही वीर के प्रबल खञ्जर प्रहार के वेग को सहन करने में असमर्थ सिद्ध होकर श्वेत अश्वारोही वीर आहतावस्था में भूमि पर पड़ा हुआ छटपटा रहा है। प्रधान अधिकारी ने श्यामवर्ण वीर को अन्तिम विजयी एवं सर्वप्रथम रणजीत योद्धा निश्चय कर, बिगुल द्वारा स्वयंवर रण की समाप्ति की घोषणा भी कर दी है। श्यामवर्ण और स्वेतवर्ण दोनों प्रथम और द्वितीय विजयी वीर ससम्मान महाराज रूपनगर के निकट लाये जा रहे हैं। महाराज भी खड़े होकर मानपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार कर रहे हैं। जनता यह जानने के लिए कि राजकुमारियों सदृश कन्यारत्नों को पाने वाले ये बढ़भागी कौन वीर पुरुष हैं, उनके खुले रूप से दर्शन करने के लिए छटपटाने लगी है। पूर्व इसके कि दोनों राजकन्यायें

उन दोनों प्रथम और द्वितीय स्वयंवर युद्ध के विजेताओं के गले में जय-माला पहनायें, सम्राज्ञी, सम्राट् और महाराज रूपनगर तीनों की इच्छा से, उनकी आज्ञानुसार दोनों विजेता वीरों के मुख-पट हटाये जा रहे हैं। जनता विजेताओं का परिचय पाने के लिए खड़ी-खड़ी उत्सुकता से पागल हो रही है।

जिस समय श्वेत-वर्ण योद्धा का आवरण हटाया गया तो यह देख कर उपस्थित जनता के आश्चर्य एवं हर्ष का ठिकाना न रहा कि स्वयंवर युद्ध के द्वितीय विजेता आमेर-नरेश श्री महाराज जगतसिंह जी बहादुर हैं। शीघ्र आमेर-नरेश श्री जगतसिंह जी का जय-जयकार होने लगा।

किन्तु जब प्रथम विजेता के मुख से मुखपट और रण-वस्त्र (ज़रह-बख्तर आदि) शरीर से पृथक् किये गये तो योगी सदृश भगवे रंग के लबादे से लदा हुआ, पीतवर्ण, श्वेत दाढ़ी, मूंछ और केशों से युक्त एक वृद्ध संन्यासी सा जान पड़ा। उसको देखकर न तो कोई यह पहचान सका कि वह कौन है और न उससे कोई किसी वीर के होने का अनुमान ही लगा सका। पता पूछने पर भी वह कुछ बोला-चाला नहीं, केवल एक आश्चर्य की सी शान्त मुद्रा से विक्षिप्तवत् कुछ देर इधर-उधर देखता और परिचय-विषयक संकेत से निषेध-सा करता हुआ, एक दम गिर कर निर्जीववत् मूर्च्छित हो गया। तत्काल अधिकारीगण उसके संभालने में निमग्न हो गये। इसी समय इस भयंकर एवं आश्चर्यमय दृश्य को देखकर उसके आघात के सहन करने में असमर्थ हो और हृदय से संतोष की इतिश्री कर स्वयं राजकुमारी किरणमयी भी मर्माहत होकर गिर गई। महाराजा ने जयमाला पहनाने की क्रिया को कुछ समय के लिये स्थगित रखने की आज्ञा देकर राजकुमारियों को तत्काल महल में भिजवा दिया। राजमहल में मूर्च्छिता कुमारी किरण-मयी की पर्याप्त रूप से उपचार-चिकित्सा एवं सेवा-शुश्रूषा होने लगी।

उसके कुछ होश में आने पर राजबाला ने उसके कान के निकट मुँह लेजाकर कहा कि श्यामवर्ण विजेता वीर मुझे तो बाग वाले संन्यासी से मालूम पड़ते हैं। परन्तु राजकुमारी ने उसे सुनी-अनसुनी कर, न उस पर ध्यान ही दिया और न उस बात की कल्पना पर उसे कुछ विश्वास ही हुआ।

इधर शेरशाह और आमेर-नरेश का परामर्श पाकर भारत सम्राट् ने विजेता संन्यासी को एक जादूगर मानकर उसके योद्धा रूप धारण करके किसी मन्त्र-तन्त्र द्वारा की गई नर-हत्या; वृद्ध योगी होकर भी राजकन्याओं के साथ विवाह की अनधिकार चेष्टा, छल, कपट और राजकुमारी के हृदय को आघात पहुँचाने के अनेक अपराधों में उसे कठिन दण्ड देने के विचार से कारागार में भिजवा दिया और यह घोषणा कराकर उसके दवादारू की व्यवस्था कर दी कि संन्यासी के पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर, अर्थात् जिस समय वह पूरी तरह सफाई देने के योग्य हो जाये, उसके ऊपर लगाए गये आरोपों का विचार रूपनगर की खुली अदालत में किया जाये, तथा अदालत के द्वारा यदि कहीं उसका अपराध सिद्ध हो जाये तो फिर उसके लिए प्राण-दण्ड पर्यन्त कठोर से कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाये।

तेरहवाँ परिच्छेद

रूपनगर के मित्रनिवास के एक अत्यन्त सुसज्जित शयन-कक्ष में आमेर-नरेश महाराज जगतसिंह चुपचाप चिन्तित अवस्था में अपने पलंग पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। अभी सायंकाल का भोजन समाप्त ही हुआ है। आमेर-नरेश के प्रमुख सामन्त भूरसिंह फर्श पर बैठे महाराज के बदलते भावों का बिना कुछ कहे हुये अध्ययन कर रहे हैं। महाराज का चेहरा उतरा हुआ है, मानो वे उस पहलवान के समान हों जिसने किसी कुश्ती की तैयारी तो बहुत की हो, दैववशात फिर भी वह उसमें सफल न हो सका हो, उस विद्यार्थी की तरह हों, जिसने कठिन परिश्रम करके रात-दिन एक कर दिये हों, किन्तु इतने पर भी वह अपने परिश्रम में असफल रहा हो, अथवा मरुभूमि के उस हरिण की भाँति हों, जिसके बहुत कुछ दौड़-धूप करने के उपरान्त भी, उसे जल की एक बूँद तक प्राप्त न हुई हो।

वातावरण की निःशब्दता को भंग करते हुये, आमेर-नरेश कुछ दुखित-स्वर में कहने लगे : "भूरसिंह, मेरी सारी तपस्याएँ बेकार हो गईं।"

"किन्तु सब से अधिक आश्चर्य की बात तो यह है प्रभो! कि यह फालतू जन्तु 'स्याहपोश' किस आसमान से उतर आया?" भूरसिंह ने उसी स्वर में अपने मनोभाव प्रकट किये।

"यही तो मैं भी सोचता हूँ कि यह व्यक्ति छत्रसाल तो है नहीं, कारण कि मैंने उसकी भले प्रकार से परीक्षा कर ली है। तब यह और

कौन है ?" आमेर-नरेश ने बड़ी उत्सुकता के साथ अपने निश्चय का स्पष्टीकरण किया ।

"महाराव छत्रसाल तो निश्चित रूप से नहीं हैं । किन्तु फिर यह है कौन ? यह मेरे भी अनुमान में नहीं आता ।" विवेचनात्मक कण्ठ से सामन्त ने व्यक्त किया ।

"कुछ भी हो, किरण का चित्र तो मेरे हृदय में ऐसा जम कर बैठा है कि उसकी प्रेरणा, येनकेन-प्रकारेण उसकी प्राप्ति के पश्चात् ही दम लेने देगी ।" आमेर-नरेश ने ज़ोरदार शब्दों में, पूर्ण निश्चय के साथ कहा ।

"प्रभो ! क्या कोई ऐसा उपाय भी है जो वह सरलता से श्रीमान् को मिल जाय ?" सामन्त ने अपनी शुभाकाँक्षा प्रकट करते हुए प्रश्न किया ।

"कोशिश तो ऐसी ही कर रहा हूँ कि किरण और ज्योति दोनों ही मेरी हो जाँय, आगे दैव इच्छा ।" आमेर-नरेश ने निःश्वास छोड़कर दुःखी हृदय से उत्तर दिया ।

"प्रभो ! मैंने तो लोगों को ऐसा कहते सुना है कि राजकुमारी किरणमयी श्रीमान् को न पाकर अत्यन्त दुखी हो रही है और प्राण तक देने पर तत्पर है ।" चापलूसी के स्वर में सामन्त ने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये कहा ।

"ऐसी दशा में तो मुझे उसकी प्राप्ति के लिये और भी तेज़ी के साथ प्रयत्न करना पड़ेगा ।" दृढ़ता के साथ आमेर-नरेश बोले ।

इसी समय द्वारपाल ने कक्ष में प्रवेश करके आमेर-नरेश को दंडवत किया और इस प्रकार खड़ा हो गया मानो वह कुछ कहना चाहता है, पर कहने का साहस नहीं कर पा रहा है । आमेर-नरेश ने दंडवत का उत्तर देते हुए पूछा, "कहो क्या बात है द्वारपाल ?"

"महाराज ! मौकमसिंह नाम के एक बूँदी के सामन्त श्रीमान् के

दर्शन करने के लिये आये हैं।" नतमस्तक हो द्वारपाल ने उत्तर दिया।

"भूरसिंह जी! सम्मानपूर्वक ले आओ उन्हें। शायद हाड़ा सरदार अपनी शर्त और तलवार का निर्णय करने आये हैं। अच्छा ठीक है।" आमेर-नरेश ने अनुमान लगाकर कहा।

महाराज की आज्ञानुसार भूरसिंह अन्यमनस्क मन से द्वारपाल के साथ बाहर गया और शीघ्र अपने साथ इन्द्रगढ़ाधिपति को लेकर आ गया। आते के साथ ही इन्द्रगढ़-नरेश मौकमसिंह जी ने महाराज को प्रणाम किया और आमेर-नरेश ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् दोनों में निम्न प्रकार से बातचीत होने लगी—

"आज बहुत दिन के पश्चात् हाड़ा सरदार पधारे हैं?"

"महाराज की सेवा-शुश्रूषा में निमग्न रहने के कारण इसके पूर्व दर्शन नहीं कर सका। अब महाराज को ज्योति-प्राप्ति की बधाई देने आया हूँ।"

"धन्यवाद! बड़ी कृपा की आपने, आइये, विराजिये"— कहकर सामने पड़ी कुर्सी की ओर संकेत किया। मौकमसिंह उस पर बैठ गये।

"तो अब तो सम्भवतः महाराज का घाव कुछ-कुछ भर चला होगा।"

"नहीं, नहीं! घाव तो और अधिक भयंकर हो गया है।"

"यह सुनकर तो हृदय को बड़ी वेदना हो रही है, रावसाहब!"

"दैवेच्छा। क्या किया जा सकता है? उपाय तो अच्छे होने के बहुत-से हो रहे हैं।"

इसी समय भूरसिंह ने कुछ अकड़ के साथ कहा, "किरण के न मिलने से तो घाव बढ़ता ही, घटता कैसे? घाव ठीक कराने के लिए तो उन्हें युद्ध में आना चाहिये था।"

"तो शायद आप उन्हें पराजित ही कर देते, क्यों?" उसी प्रकार गर्ज कर मौकमसिंह बोले।

"पराजय के भय से ही तो वे युद्ध में नहीं आये।" कहकर भूरसिंह ने मुँह बनाया।

"आये या नहीं आये, इससे क्या ? हाँ, महाराज ! वह हाड़ा की तलवार वापस कीजिये।" मौकमसिंह ने फिर आमेर-नरेश को सम्बोधन करके कहा।

"नहीं प्रभो ! इन्द्रगढ़राव जी तो शर्त हारने पर मृत्यु के अधिकारी हैं, तब तलवार वापस करने का प्रश्न कैसा ?" भूरसिंह ने निर्भय होकर उपहास के ढंग से कहा।

"ऐसा अन्याय क्यों, महाराज ?" मौकमसिंह ने प्रश्न किया।

"क्योंकि महाराव छत्रसाल जी हमारे मुकाबले के लिये तो न आये न ?" आमेर-नरेश ने कहा।

"यह कैसा न्याय है, महाराज ! आखिर आप तो किरण की प्राप्ति के अधिकारी नहीं हुये।" मौकमसिंह ने कहा।

"कौन अधिकारी है, इसका निर्णय आपके हाथ में नहीं है, राव-साहब !" आमेर-नरेश झल्लाकर बोले।

"निर्णय किसी के हाथ में हो, मगर आप स्वयंवर-युद्ध में हार तो गये न ?"

"कौन कहता है कि मैं हार गया ? जादू-टोने वाले योगियों के द्वारा हराया जाना वीरों की हार नहीं कही जा सकती। वह मेरा प्रतिद्वन्द्वी तो एक जादूगर है।"

"क्या प्रमाण है आपके पास कि वह एक जादूगर है। मैं कहता हूँ कि आपने हाड़ा-तलवार से हार खाई है।" मौकमसिंह गर्म होकर बोले।

"कायर और क्लीव हाड़ा, संग्राम में मुँह छिपाकर अब मंत्र-तंत्र जानने वाले जादूगरों को अपनाकर किरणमयी को पाने आये हैं क्या ? अब आप लोगों के झांसे में दुनिया नहीं आ सकती।" भूरसिंह ने अकड़ कर कहा।

"मुग़लों के टुकड़ों पर बहादुर बनने वाले वीर हमने कायर और क्लीव हाड़ाओं की तलवार से ही हार खाते देखे हैं।" मौकमसिंह गर्ज कर बोले।

"हाड़ाओं ने कब और किसको हराया ?" आमेर-नरेश ने रोष में भरकर पूछा।

"बूंदी-नरेश छत्रसाल ने स्वयंवर-युद्ध में आमेर-नरेश जगतसिंह जी को।" मौकमसिंह ने उत्तर दिया।

"असम्भव ! असम्भव !!"

"वह भी सम्भव और यह भी सम्भव। नहीं, नहीं, ध्रुव सत्य और यथार्थ।" कहकर फतह खाँ मेव का कटा हुआ सिर महाराज के सामने रख दिया।

"ओह, हत्या ! वध !! अपराध !!! भूरसिंह, रावजी को पकड़ लो।"

आज्ञा पाते ही भूरसिंह उन्हीं की शर्त वाली तलवार को उठाकर सामने आ गये।

"ठाकुर साहब ! यदि मेरे निकट आये तो अच्छा न होगा। अभी मेरे पास कोटे की कटार मौजूद है। लीजिये ! यह निकाल ली मैंने। इसके हाथ में रहते हुए मुझे कोई पकड़ नहीं सकता।" मौकमसिंह ने गर्जना की।

भूरसिंह ने हाड़ा सरदार की बात पर ध्यान न दे उसे पकड़ने का यत्न किया। हाड़ा सरदार ने कटार सीधी कर दी। दोनों वीरों ने एक-दूसरे पर वार किये। भूरसिंह का वार खाली गया। भूरसिंह के हाथ में कटार लग गई। कटार फैंक कर उसी समय भूरसिंह का तलवार वाला हाथ पकड़कर हाड़ा सरदार ने बड़ी तेज़ी से तलवार छीनकर अपने अधिकार में कर ली। हाथ में कटार लगने से घाव हो गया और उससे रक्त प्रवाहित होने लगा। भूरसिंह चीख मारकर भूमि पर बैठ गया और वह बेहोश

हो गया। मौकमसिंह तलवार लेकर धीरे-धीरे वहाँ से चल दिये। महाराज जगतसिंह ने अपने सामन्त को घायल और अपराधी को खिसकता देखकर ज़ोर से पुकारा 'पकड़ो, पकड़ो, अपराधी को मत जाने दो।' महाराज के शोर मचाने पर रूपनगर और आमेर के सैनिकों ने घटना-स्थल पर पहुँचकर मौकमसिंह को बन्दी बना लिया। इसी समय नगर में तत्काल यह अपवाद फैल गया कि बूँदी के किसी सामन्त ने आमेर-नरेश पर घातक आक्रमण किया है जिससे महाराज बाल-बाल बचे हैं। रूपनगर-नरेश इस समाचार को सुनते ही घटनास्थल पर जा पहुँचे। यह देखकर तो सन्तोष हुआ कि महाराज जगतसिंह जी सकुशल हैं, केवल ईशरदा सरदार भूरसिंह के थोड़ी चोट लगी है, किन्तु जब इन्द्रगढ़ रावसाहब के घातक होने और उनके बन्दी बनाने की खबर मिली तो उनके होश बिगड़ गये। राव जी का रूपनगर में अपमान उनके लिये मंगल-सूचक नहीं था। उन्होंने पारीक जी से परामर्श लेकर आमेर-नरेश को भी अपनी स्थिति समझाई और भूरसिंह, बन्दी हाड़ा राव साहब और आमेर-नरेश को साथ लेकर सम्राट् के शिविर की ओर चल पड़े। सम्राट् के निकट पहुँचकर उन्होंने हाड़ा सरदार और ईशरदा के झगड़े का हाल शाहजहाँ के सामने उपस्थित किया। शाहजहाँ ने सारे मामले को सुना और समझकर बन्दी से कहा—

"आप मुल्जिम हैं, हाड़ा सरदार।"

"नहीं, सम्राट्! मैं पूर्णतया निर्दोष हूँ।"

"क्यों? क्या आपने भूरसिंह ठाकुर को कटार मारकर घायल नहीं किया? बेगुनाह फतह खाँ को क़त्ल नहीं किया? क्या महाराज आमेर के साथ झगडा नहीं किया?"

"सारी बातें ठीक हैं सम्राट्! बूँदी-नरेश छत्रसाल जी को छिपकर तीर मारने वाला फतह खाँ दण्ड का अधिकारी था, जिसे बूँदी की अदालत ने प्राण-दण्ड दिया। मैंने महाराज को उसका सिर दिखाकर

उसके दण्ड की सूचना मात्र ही तो दी है। भूरसिंह मुझे रोक कर फतह खाँ का बदला लेने के लिये मुझसे द्वन्द्व करने लगे। उनका वार खाली गया। मेरी कटार उनके लग गई। महाराज से मैंने जिस संयम से वार्तालाप किया उसमें द्वेष का नाम भी न था।"

"लेकिन आप महाराज के आरामगाह में रात के वक्त गये ही क्यों ?"

"अपनी तलवार लेने के लिये गया था, सम्राट् !"

"कैसी तलवार लेने के लिये, सामन्त !"

"महाराज से पूछिये। एक दिन भूरसिंह की और मेरी शर्त हुई थी। स्वयं महाराज साक्षी हैं। मेरी तलवार और भूरसिंह का सब्जा घोड़ा शर्त पर रखे गये।"

इस पर सम्राट् को अपनी तरफ प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुये पाकर आमेर-नरेश महाराज जगतसिंह जी ने मार्ग में मिलने, फतह खाँ को माँगने तथा स्वयंवर-युद्ध में विजय-सम्बन्धी शर्त भूरसिंह के साथ करने के उपलक्ष में ईशरदा सरदार के घोड़ा और इन्द्रगढ़राव जी के तलवार दाव पर लगाने का विवरण दिया। महाराव छत्रसाल तदनुसार स्वयंवर में शामिल ही नहीं हुये हैं—यह भी आरोप लगाया।

समस्त वृत्तान्त के सुनने के पश्चात सम्राट् शाहजहाँ मौकमसिंह की तरफ मुड़कर निम्न प्रकार से वार्तालाप करने लगे—

"आप फिर भी कुसूरवार हैं रावसाहब ! तलवार वापस लेने के हकदार नहीं, बल्कि सजा के हकदार हैं।"

"ऐसा क्योंकर, सम्राट् ?"

"क्योंकि जंग में महाराव छत्रसाल जी शामिल नहीं हुये।"

"अच्छा फिर ?"

"एक जादूगर फकीर ने जादू करके १०७ बांके जंगजू जवानों को फ़ना किया है। राजकुमारी को हथियाने की साज़िश और उसका दिल तोड़ने की कार्यवाही की। लिहाज़ा उस फकीर को सजा दी जायगी।"

"सज़ा, सम्राट् ?"

"और नहीं तो क्या ?" इस सल्तनत में महाराव छत्रसाल, महाराज जगतसिंह और नवाब शेरशाह के बराबर जवाँमर्द कोई है ही नहीं।

"तो इससे क्या हुआ, सम्राट् ? महाराज जगतसिंह तो किरण के अधिकारी नहीं।"

"क्यों नहीं ? शाहज़ादी और राजकुमारियाँ, फकीर, जादूगर और पत्तेमारों को नहीं ब्याही जाया करतीं।"

"जी, सम्राट् !"

"इसलिए फकीर की पहले नम्बर की फतह को हम मंजूर नहीं करते हैं। ऐसी सूरत में महाराज जगतसिंह का पहला नम्बर और शेरशाह का दूसरा रहा।"

"यह घोर अन्याय है, सम्राट् ! अगम्य अन्याय !!"

"नहीं, नहीं बिल्कुल इन्साफ है। इन्साफपसन्द कायदेआज़म शाहन्शाह जहांगीर का फरजन्द शाहजहाँ इन छोटी सी बातों पर कहीं बेइन्साफी कर सकता है, सरदार ?"

"किन्तु इस मामले में न्याय-मूर्ति सम्राट् ने न्याय कहाँ किया ?"

"क्यों नहीं किया ? शर्त के माफिक महाराव छत्रसाल जी लड़ने नहीं आये। इस पर आप शर्त खो बैठे। फिर भी आप फिजूल झगड़ा करने आमेर महाराज के आरामगाह पर जा पहुँचे। कहिये तब आपको सज़ा से कौन सा इन्साफ बचा सकता है ?"

"अच्छा ! कौन कहता है ?"

"हम कहते हैं ! बोलो ?"

"ऊँ हूँ।"

"ऊँ हूं क्या, आप बोलते क्यों नहीं हैं ?"

"पूर्व इसके कि मैं आगे कुछ कहूँ, न्यायमूर्ति सम्राट् ! मैं उस जादूगर

फ़कीर को श्रीमान् के समक्ष देखना चाहता हूँ।"

"सिपहसालार शुजाअत खां ! कैदी जादूगर को हमारे रूबरू दरबार में हाज़िर करो।"

सम्राट् का आदेश पाकर सिपहसालार शुजाअत खाँ तत्काल वहाँ कुछ सैनिकों को लेकर बन्दीगृह के लिए प्रस्तुत हुए और उसी समय बन्दी जादूगर को सैनिक नियंत्रण में लेकर दरबार में आ उपस्थित हो गये। सैनिकों ने सम्राट् को कोरनिश की। जटाजूट बन्दी संन्यासी ने हाथ उठा कर सम्राट् को आशीर्वाद दिया। सम्राट् ने भी सबके प्रणाम का यथोचित उत्तर दिया। जटाजूट संन्यासी को दरबार में देखकर राव मौकमसिंह उछल पड़े और प्रणाम करके जोश के साथ पुकारने लगे—"हाड़ा वंशावतंस महाराव छत्रसाल की जय !"

शाहजहाँ—यह बौखलाहट कैसी रावजी ! यहाँ पर महाराव छत्रसाल जी भी कहीं हैं, नहीं तो फिर आप ताज़ीम किस को दे रहे हैं ? यह तो फकत एक फकीर है।

मौकमसिंह—बून्दी-नरेश महाराव छत्रसाल जी यहीं सम्राट् के दरबार में हैं।

शाहजहाँ—मालूम पड़ता है आपका दिमाग़ कुछ खराब हो गया है, रावजी। दरबार में सिवाय इस जादूगर के जो न बोलता-चालता है और न कुछ खाता-पीता है, और कोई है ही नहीं। इसके अलावा इस शख्स का बून्दी महाराव का सा हुलिया ही नहीं है। फिर तुम हाड़ा नरेश किसे पुकार कर ताज़ीम दे रहे हो ?

मौकमसिंह—इन्हीं महात्मा जी को, सम्राट् !

शाहजहाँ—इस तीन दिन से फाका करने वाले फकीर से बून्दी महाराव का ताल्लुक ?

मौकमसिंह—तीन दिन का फाका ही क्यों, तेईस दिन का सम्राट् !

शाहजहाँ—खैर, तेईस ही दिन का सही। इसके जादू को तो हम भी तसलीम करते हैं। जब यह एक सौ सात योद्धाओं को मार सकता है तो तेईस दिन का फाका भी कर सकता है।

मौकमसिंह—मगर इनका तमाशा देखिये सम्राट्।

शाहजहाँ—कैसा तमाशा? तमाशा तो इसका उसी दिन देख लिया, अब मतलब की बातें करो।

मौकमसिंह—इनका यह भगवा लबादा उतरवाइये सम्राट्। सारा रहस्य अभी खुलता है।

शाहजहाँ—अच्छा फकीर, अपना लबादा उतार दो।

इसके पश्चात ज्यों ही फकीर ने भगवा लबादा उतारा तो संन्यासी का शरीर बिलकुल महाराव छत्रसाल जैसा जान पड़ा।। वही भुजा पर गुदा हुआ था 'बूंदी नरेश महाराव छत्रसाल' और वही बाईं जाँघ के घाव पर पट्टी। अभी तक सम्राट् शाहजहाँ तथा अन्य दरबारीगण उनके शरीर को देखकर पहचानने की कोशिश ही कर रहे थे कि मौकमसिंह ने जटा की एक डोरी तोड़ दी। अब तो दाढ़ी, मूँछ और बनावटी केश दूर जा पड़े। एक रबड़ की बारीक झिल्ली, जो मुँह पर चढ़ी हुई थी, वह भी उतर गई और स्पष्ट रूप से महाराव छत्रसाल जी का चेहरा सब को दिखाई देने लगा। शाहजहाँ और महाराज रूपनगर, बूँदी-नरेश को देखकर हर्ष से उछल पड़े। चिकों के अन्दर बैठी सम्राज्ञी मुम्ताज तथा अन्य बेगमें और शाहजादियाँ भी बूँदी-महाराव का यह तमाशा देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं। इस समय दरबार में सब के हृदय में हर्ष छा गया, किन्तु यदि किसी को आन्तरिक वेदना हुई तो वह महाराज जगतसिंह और शेरशाह को, जिनके खिले हुए चेहरे इस दृश्य को देखकर ही बिलकुल मुरझा गये और पेट में रई-सी चलने लगी। फिर भी वे ऊपर से प्रसन्नता का अभिनय करते रहे।

"आखिर आप ने यह सब अजीब तमाशा क्यों बनाया, महाराव ?" शाहजहाँ ने हँसकर पूछा ।

"केवल राजपरिवार के मनोरंजन के लिये सम्राट् ।" बूँदी-नरेश ने उसी स्वर में उत्तर दिया ।

"हमने तो इन मुसाहिबों की सलाह से आपको जादूगर ही तसव्वुर कर लिया था और तैयार हो गये थे सज़ा देने के लिये ।" शाहजहाँ ने प्रकट किया ।

"सब ठीक ही है, सम्राट् !" बूँदी-नरेश ने मुस्कराकर कहा ।

"नहीं, नहीं, मुसाहिबान ! आइन्दा ऐसी गलती कभी न हो ।" शाहजहाँ ने कहा ।

"जहाँपनाह ! इसमें मुसाहिबों का कोई कुसूर नहीं है । महाराव ने रूप ही ऐसा बनाया कि जिसका कयास ही न हो । इसके अलावा इस बुरी तरह घायल हो जाने पर इस बहादुरी से इनका लड़ना ही कब मुमकिन था ?"

"खैर, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं अपने बड़े भाई से ही युद्ध में हारा ।" अपनी झेंप और पराजय की कालिमा धोते हुए महाराज जगतसिंह कहने लगे ।

"और बन्दा भी तो फकत जनाब ही से हारा है । क्यों बड़े भाई, ठीक है न ?" शेरशाह ने स्वर में स्वर मिलाया ।

"बन्धुवर ! चिन्ता नहीं, मैं इस विजय को कोई महत्व नहीं देता ।" छत्रसाल ने उत्तर दिया ।

"मगर हम आपकी काबिले तारीफ बहादुरी, हिम्मत और जवाँ-मर्दी पर आपको दिल से दाद देते हैं ।" शाहजहां पुलकित होकर बोले ।

"सम्राट् की इस कृपादृष्टि एवं अनुग्रह के लिये सेवक अत्यन्त कृतज्ञ है ।" बूँदी-नरेश छत्रसाल ने विनम्र-भाव से कहा ।

"इन्द्रगढ़-राव मौकमसिंह जी ! आपको अपनी तलवार वापस लेने

का पूरा हक है। आप शर्त जीत गये। हम हाड़ा-तलवार को काबिले-तारीफ समझते हैं और आपकी बहादुरी और होशियारी पर खुश होकर आपके ठिकाने में बारह घोड़े की जागीर अपने खालसा इलाके से निकाल कर शामिल करते हैं। अब तो तुमको हमारी तरफ से इन्साफ की शिकायत नहीं होनी चाहिये।" शाहजहाँ ने कुछ गम्भीर होकर कहा।

"धन्य-धन्य, न्यायमूर्ति सम्राट्! सेवक इस कृपा का अत्याभारी है।"

इसके पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ ने एक मखमली म्यान और सुवर्ण की मूठ की तलवार, बारह घोड़े की जागीर का पट्टा और खिलअत मौकमसिंह को प्रदान की तथा महाराज जगतसिंह को आदेश दिया कि भूरसिंह का सब्ज़ा घोड़ा भी शर्त जीतने के फलस्वरूप इन्द्रगढ़राव साहब को फौरन दिलाया जाय।

इसके पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ ने महाराव छत्रसाल को भी एक मखमली म्यान तथा जवाहरात जटित सुवर्ण की मूठ की उत्तम तलवार, खिलअत और दो शीघ्रगामी बहुमूल्य घोड़े स्वयंवर-युद्ध में विजयी होने के फलस्वरूप अपनी तरफ से पुरस्कार में दिये।

इसी समय रूपनगर-नरेश के पास राजमहल से समाचार आया कि उपरोक्त घटनाओं के सुनने के कारण राजकुमारी किरणमयी की अवस्था एक विक्षिप्त व्यक्ति के समान हो, भयंकर रूप धारण करती जा रही है। गत तीन दिन से उसने कुछ खाया-पीया नहीं है। चन्द मिनट के लिए होश में आकर गहरी आह खींचती है और फिर बेहोश हो जाती है। फिर उसी बेहोशी की दशा में पलंग पर पड़ी न जाने क्या-क्या अनर्गल बातें बड़बड़ाया करती है। इस समय तो उसकी तबियत और भी ज्यादा खराब हो रही है। रह-रहकर हिचकियाँ आ रही हैं। दिल धड़क रहा है। आँखें लाल-लाल मशाल के मानिन्द जल रही हैं। कभी-कभी उनसे आँसुओं के झरने भी झरने लगते हैं। कभी वह आश्चर्य की सी अवस्था

में भर कर अपने चारों तरफ देखने लगती है, मानो उसकी आँखें किसी हितैषी प्राणी को खोज रही हों।

महाराज रूपनगर इस समाचार के मिलने पर सम्राट् शाहजहाँ से विदा लेकर महाराव छत्रसाल जी सहित अपने राजमहल में पधारे। मंत्री और वैद्यों से राजकुमारी की रुग्ण दशा के सम्बन्ध में विचार-विनिमय किया। उन्होंने कहा कि कुमारी के हृदय को संन्यासी के विजयी होने के कारण घातक आघात पहुँचा है। अतः केवल औषधियों से उसकी दशा में सुधार होना अत्यन्त कठिन है। आवश्यकता इस बात की है कि उसको किसी तरह विजयी संन्यासी के बूँदीपति होने का विश्वास कराया जाय। हो सके तो महाराज को फिर संन्यासी रूप में राजकुमारी के सम्मुख उपस्थित कर वहीं उनको अनावृत किया जाय। महाराव छत्रसाल जी के संन्यासी रूप धारण कर स्वयंवर-विजय करने का समाचार अब तक महलों में भी पहुँच गया था। राजबाला ने किरणमयी को भी यह शुभ सूचना दी, किन्तु उसकी बात पर उसे इसी प्रकार विश्वास नहीं हुआ, जैसे किसी निपट भाग्यहीन निर्धन व्यक्ति को अतुल धनराशि की लाटरी खुलने पर सहज ही विश्वास नहीं हुआ करता। इसके पश्चात् ज्योतिमयी और महारानी अर्थात् किरण की माता ने भी बूँदी महाराव छत्रसाल जी का ही श्यामवर्ण वीर होना बतलाया, किन्तु इस पर भी उनका विश्वास न कर किरणमयी ने यही समझा कि उसके दिल को बहलाने के लिए ही यह झूठमूठ बहाने बनाये जा रहे हैं। इसी समय राजकुमारी किरणमयी के विश्राम-कक्ष में महाराज रूपनगर ने महाराव छत्रसाल जी सहित प्रवेश किया। इस समय किरणमयी को कुछ होश में पाकर उससे महाराव छत्रसाल जी का परिचय कराया और इस रहस्य का स्पष्टीकरण किया कि आप ही ने श्यामवर्ण वीर के रूप में स्वयंवर-युद्ध के प्रथम विजेता होकर, तुम्हारे पाणिग्रहण-संस्कार का अधिकार प्राप्त किया है और

यह विवाह-कार्य कल शुभ वेला में परिपूर्ण हो जायगा। इस समय महाराव उस वेश-परिवर्तन का अभिनय यहीं महल में करके दिखलाएंगे, जिसको धारण करके संन्यासी तथा श्यामवर्ण वीर बन वे स्वयंवर-युद्ध में सम्मिलित हुए थे। बूंदी के महाराव छत्रसाल जी ने महारानी, राज-कुमारी और समस्त रनवास अर्थात् दासी भृत्यादि के समक्ष अपना संन्यासी तथा श्यामवर्ण वीर का रूप धारण करके दिखलाया।

अब इस तरह बून्दी-पति को वेश-परिवर्तन की दशा में प्रत्यक्ष देखकर किरणमयी को यह विश्वास हो गया कि वास्तव में छत्रसाल ही ने संन्यासी का रूप धारण करके जनता को भ्रम में डाला और श्यामवर्ण वीर बनकर स्वयंवर युद्ध को विजय किया है। इस प्रदर्शन के पश्चात् रूपनगर महाराज श्री महाराव छत्रसाल जी को राजकुमारी किरणमयी के कक्ष में छोड़कर बाहर चले गये। महाराज के चले जाने पर राजबाला और किरणमयी ने प्रणाम के पश्चात् उनका सादर एवं सस्नेह स्वागत किया। महाराव छत्रसाल राजकुमारी के पलंग के निकट एक कुर्सी पर बैठ गए और तीनों निम्न प्रकार से वार्तालाप करने लगे—

राजबाला—स्वयंवर-विजय की बधाई महाराज! मिठाई खिलाइयेगा न?

छत्रसाल—पहले राजकुमारी किरणमयी से मिठाई खानी चाहिये। वैसे तो हमें भी मिठाई खिलाने में कोई संकोच नहीं है पर सन्देह है तुम से हज्म भी होगी या नहीं।

राजबाला—मैं राजकुमारी किरणमयी जैसी नाजुक-मिजाज थोड़े ही हूँ जो ज़रा सक़ील भोजन से ही तबियत बिगड़ जायगी।

छत्रसाल—नहीं, यदि तबियत बिगड़ भी जाएगी तो कोई बात नहीं, चिकित्सा हो जायगी।

राजबाला—पहले आप अपनी इनकी तो चिकित्सा करलें, हम तो पीछे ही हैं। (किरण से) बहन! अब अच्छी हो जाओगी। अब

आ गये तुम्हारे रोग को मिटाने वाले योग्य वैद्यराज।

किरण—चल हट ! मुझ से मज़ाक न कर। इन वैद्यराज को लेजा कर कहीं अपना ही इलाज करा।

राजबाला—यदि मैंने ऐसा प्रयास किया तो कहीं विषपान करके प्राण तो न त्याग दोगी। अब तक तो हमारी बातों का श्रीमती जी को विश्वास ही नहीं होता था।

किरण—महाराव ! देखिये !! यह नहीं मानती, व्यर्थ ही मुझे छेड़े जा रही है।

राजबाला—लो, तो मैं जाती हूँ। अब तो महाराव आगये न हर बात में हिमायत लेने व नाज़ उठाने के लिये, इस नाज़भरी चितवन का लक्ष्य बनकर।

इसके अनन्तर परिस्थिति को समझते हुए राजबाला दोनों को कक्ष में छोड़कर बाहर चली गई। एकान्त स्थान में पुनर्मिलन होने पर दोनों कुछ-कुछ संकुचित तो अवश्य हुए पर पहले से कुछ कम। फिर परस्पर हँसी और मुस्कराहट के साथ निम्न प्रकार से बातचीत होने लगी—

"महाराव ! आपने घायल होकर भी इस दासी के कष्ट-निवारण करने के लिए अपने आप को घोर आपत्ति में डाल दिया। इसके लिए यह दासी आजन्म ऋणी रहेगी।"

"मैंने इस आपत्ति में अपने आपको तुम्हारे कष्ट-निवारण के लिए डाला या अपने कष्ट-निवारण के लिए, इसका निराकरण महा कठिन है। वस्तुतः मेरे प्राण तुम्हारे ही जीवन के साथ बँधे हैं।"

"मेरी दयनीय दशा को देखकर तथा मुझे साथ लेकर शीघ्र बूँदी चलें। अब वियोग अधिक सहन नहीं होता।"

"अच्छा ! कृष्ण-रुक्मिणी की भाँति, अर्जुन-सुभद्रा की तरह या पृथ्वीराज-संयोगिता……

"चलिए ! हटिए !! ऐसी बातें करते हुए आप बड़े बुरे आदमी मालूम देते हैं।"

"विषपान से भी अधिक बुरे, इसी लिए न कि, प्रथम मिलन की बात याद रखते हैं। वही फूल और भ्रमर, वही चन्द्र और चकोर तथा वही दीपक और पतंग।"

"मैं आपके हाथ जोड़ूँ। आप कृपा करके मुझसे ऐसी बात न करें।"

"हाथ-पैर जोड़ने से काम थोड़े ही चलेगा। सौदा प्रेम का है—तन, मन, नहीं-नहीं, अन्तःकरण जोड़ने होंगे।"

"वे तो न जाने कब से जुड़े हुए हैं, देव ! सोते-जागते, खाते-पीते अर्थात् हर समय श्रीमान् की यही मनमोहनी मूर्ति हृदय-मन्दिर में वास किया करती है। श्रीमान् की भगवान् जाने।"

"तुम्हारे हृदय से अधिक शोचनीय दशा मेरे दिल की है। न जाने तुम्हारे प्रेम का अगाध सागर इसमें कहाँ से उमड़ कर हिलोरें मारने लगा है।"

"नहीं-नहीं, मुझे आपके इस कथन पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि पुरुष का प्रेम बनावटी होता है।"

"और स्त्रियों का असली, खरा, विशुद्ध ! जैसे गाय का शुद्ध दूध और पुरुष का जैसे छाछ अथवा स्त्री का जैसे मधुमक्खी का शहद और पुरुष का जैसे डंगारे का; क्यों, है न यही बात ?"

"अच्छा छोड़िये इन बातों को। बताइये आपके घावों का अब क्या हाल है ?"

"तुम्हारी सौंदर्य-प्रतिमा को देखकर मेरे सारे घाव भर जाते हैं। तुम अपने स्वास्थ्य की बात भी कहो।"

मेरी तबियत अब बिल्कुल ठीक है। मेरे रोग के वैद्य तो श्रीमान् हैं ही। आते के साथ ही जादू जैसा असर कर दिया।"

"अभी तक वैद्य की औषधि ने तो उदर में प्रवेश तक भी नहीं किया। तबियत वैद्य की सूरत देखकर ही ठीक हो गई। वाह रे जादू ! तब तो वैद्य नहीं वास्तव में जादूगर है और है शूली का अधिकारी।"

"आप तो मुझे तंग करना चाहते हैं—फिर वही मज़ाक"—कह कर किरणमयी ने उक्त वार्तालाप के अन्त में अपने मुँह को हाथों से ढक लिया।

महाराव छत्रसाल ने 'नहीं प्रिय यह उचित नहीं' कह कर उसके हाथ उसके मुँह पर से हटा कर अपने मुँह से लगा लिए। इसी समय राजबाला ने 'जलपान' का सामान लेकर कक्ष में प्रवेश किया। महाराव छत्रसाल उस मनुहार को प्राप्त करके वहाँ से विदा हो गये।

चौदहवाँ परिच्छेद

प्रातः नौ बजे का समय है और गर्मी की ऋतु है। किन्तु आज आकाश-मण्डल में थोड़े-थोड़े बादल होने के कारण गर्मी कुछ कम है। वायु भी शीतल चल रही है। इस समय रूपनगर के राजमहल में बड़ी चहल-पहल मची हुई है। राजा, प्रजा और राजकर्मचारी, सेवक, भृत्यादि सभी इस हर्ष से आत्म-विस्मृत हो रहे हैं। इस प्रसन्नता का कारण यह है कि आज महाराज की बहुत दिनों की अभिलाषा पूरी हुई है। आज वे मानसिक चिन्ता से ऐसे मुक्त हो गये हैं मानो गंगा नहा गये हों। उनकी वह महान् चिन्ता एवं उत्सुकता कि उनकी लाडली पुत्रियों, सौन्दर्य-सुषमा किरणमयी और ज्योतिमयी को, न जाने कैसे घर-वर प्राप्त होंगे, आज सर्वथा समाप्त हो गई है। योग्यतम उपलब्धि की धारणा को लेकर ही, परीक्षानुरूप इस कार्य के लिये ही तो स्वयंवर-युद्ध का आयोजन हुआ था। किन्तु वह भी उनके पूर्ण सन्तोष का कारण न बन सका था, क्योंकि स्वयंवर-युद्ध में कोई राजपूत विजयी होगा या यवन, किसी को क्या मालूम था ; दूसरे इस बात का भी कोई निश्चय नहीं था कि विजेता उत्तम, मध्यम या अधम किस श्रेणी का होगा और इस विवाह का परिणाम भी शुभ होगा या अशुभ। किन्तु आज इस स्वयंवर-युद्ध के परिणाम-स्वरूप उक्त समस्त शंकाएँ निर्मूल सिद्ध हो गई हैं। स्वयंवर-युद्ध में श्यामवर्ण अश्वारोही होकर बून्दी के हाड़ा-नरेश श्री महाराव छत्रसाल

जी प्रथम और आमेर-नरेश श्री महाराज जगतसिंह जी द्वितीय विजयी रहे हैं। कल ही सौन्दर्य-सुषमा ज्येष्ठा राजकुमारी किरणमयी का शुभ विवाह-संस्कार हाड़ा नरेश छत्रसाल जी और कनिष्ठा राजकुमारी ज्योति-मयी का विवाह आमेर-नरेश जगतसिंह जी के साथ सम्पन्न हुआ है। वही राजकुमारी किरणमयी जिसे अद्यावधि लेशमात्र भी आशा तथा विश्वास नहीं था कि नाहर आखेट में क्षत-युक्त हो जाने के कारण शोणित-शून्य एवं बल-विहीन हो जाने पर भी हाड़ा-नरेश स्वयंवर-युद्ध में सम्मिलित होने की क्षमता तक भी रख सकेंगे और यदि सम्मिलित हुये भी तो विजयी होकर उसे प्राप्त भी कर सकेंगे, आज सम्भावना से अधिक सफलता को देखकर परम गौरव को प्राप्त हो रही है। यही कारण है कि इस समय वह हाड़ा-नरेश की विजय पर फूली नहीं समाती। इस आनन्दातिरेक ने उस दुःख को भी जैसे भुला-सा दिया है जिसके अन्तर्गत विजेता के अनिश्चित होने के कारण वह अपने हृदय को दग्ध कर चुकी है। आज तो यह विश्वास परिपूर्ण हो जाने पर कि बून्दी-नरेश छत्रसाल प्रथम और आमेर-नरेश जगतसिंह जी द्वितीय निकले हैं, उसके हृदय-सागर में हर्ष-वारि ज्वार-भाटे में परिणत हो गया है और उच्चतम शिखर पर लहराने लगा है। इस प्रकार विवाह-संस्कार की सारी कार्यवाही, पिछले दो दिनों में बड़े हर्ष के साथ सम्पन्न हुई है। भारत-सम्राट् भी बेगम और शाहजादियों सहित स्वमित्रों के विवाहोत्सवों में समुचित भाग लेकर, आज प्रातःकाल ही राजधानी के लिये रवाना हुये हैं। अब केवल आमेर-नरेश का ही एक सामान्य संस्कार शेष रहा है और वह है विदा-विसर्जन-सम्बन्धी पलकाचारी भेट। सब स्त्रियाँ आज राजमहल में, श्रीमान् को कुछ भेंट देने के लिये एकत्रित हुई हैं। इस पलकाचार के लिये आमेर-नरेश इस समय महल में बुलाये गये हैं। एकत्रित स्त्रियों में वहाँ पर राजकुमारी किरणमयी भी उपस्थित है, जो अपनी कनिष्ठ भगिनी के पति को शुभाशीर्वाद और मंगल-कामना

के साथ एक रत्न भेंट में देने के लिये आई है। इसको एक शिष्टाचार भी कह सकते हैं और विनिमय भी, क्योंकि ज्योतिमयी कल हाड़ा-नरेश को अपना उपहार पहले ही उनके पलकाचार के समय भेंट कर चुकी है। अपने उसी कर्त्तव्य के निर्वाह में राजकुमारी किरणमयी तल्लीन है जिसको किसी दुर्घटना एवं दुर्भावना की तनिक भी आशंका नहीं है। किन्तु आमेर-नरेश के भाव, जो पहले ही से अच्छे नहीं, अब किरणमयी को अपने अति निकट देखकर उसके प्रति और अधिक विकारयुक्त हो गये हैं। अपितु जब से वह हाड़ा-नरेश छत्रसाल की पत्नी बनी है तब से तो वे ईर्ष्या से उन्मत्त हो ऐसे पशुत्व में पग गये हैं कि प्रत्येक सम्भव प्रकार से उसकी पवित्रता पर आघात करने के अवसर की प्राप्ति की ताक-झाँक में ही लग रहे हैं।

इसके साथ ही साथ इस बात की भी प्रत्यक्ष जाँच कर लेना चाहते हैं कि राजकुमारी किरणमयी की प्रवृत्ति भी उनकी ओर कुछ है या नहीं। इस कारण से, किसी भी मिलन-अवसर को वे बिना छेड़-छाड़ किये, व्यर्थ खोने को तैयार नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि भारत-सम्राट् शाहजहाँ के भी वे विशेष कृपा-भाजन हैं। यद्यपि शाही सिपहसालारी और मन्सब में अब वे बूँदी-नरेश से अधिक नहीं रह गये हैं तो भी सम्राट् के अन्तरंग एवं विशेष सलाहकार होने के नाते साम्राज्य में वे विशेष प्रभाव एवं महत्व रखते हैं। उनकी सैन्य शक्ति भी बूँदी-नरेश की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी हुई है। धन-धान्य में तो वे साम्राज्य को छोड़कर अन्य सभी रजवाड़ों से अधिक सम्पन्न हैं; बूँदी की तो बात ही क्या जो कि अन्य सब से छोटा राज्य है। यहीं तक नहीं, उनका राज्य भी इतना विस्तृत है कि जिसमें बूँदी जैसे चार राज्य समा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि बूँदी-नरेश की अपेक्षा आमेर-नरेश अधिक वैभवशाली हैं और उनको अपने इस महान् वैभव पर अभिमान भी बहुत कुछ है। उसमें भी चार चाँद लगाने के लिये नवाब शेरशाह रुहेला जैसे उच्च श्रेणी के शाही सामन्त

उनके परम मित्र और बूँदीपति के परम शत्रु हैं। वे हर समय उनकी सहायतार्थ तैयार रहते हैं।

इन समस्त परिस्थितियों से लाभान्वित होकर, आमेर-नरेश इतने उच्छृंखल हो गये हैं कि किसी भी उचितानुचित कार्य के करने में वे संकोच करने को तैयार नहीं हैं। उक्ति प्रसिद्ध है कि नाशोन्मुख नर की मति भ्रष्ट हो जाया करती है। यही कारण है कि ज्यों ही राजकुमारी किरण-मयी एकाकी रूप में उनके निकट उन्हें आशीर्वाद देने के लिये गई त्योंही उन्होंने दुर्भाग्यवश उसका हाथ पकड़ लिया और कहने लगे—'प्राणप्रिये! मैं तुम को तन, मन, प्राण और प्रण, सब से अधिक मानता हूँ और इतनी प्रबल अनुरक्ति रखता हूँ कि अपने आपको भी उस विकार में विस्मृत कर चुका हूँ।"

किरण—आमेर-नरेश, सावधान! आपको यह ध्यान होना चाहिये कि आप इस अनुचित कार्य के द्वारा कितने बड़े अपराधी बन रहे हैं। आप एक पतिव्रता एवं सती राजपूत बाला के समक्ष हैं, किसी व्यभिचारिणी बाज़ारू वेश्या के सामने नहीं। आप मेरे भाई के समान हैं, मेरा हाथ छोड़ दीजिये!

आमेर-नरेश—सुन्दरी! तुम्हारा परम सौभाग्य है कि तुमको आमेर-नरेश प्रेम करता है।

किरण—(अपना हाथ झटके से छुड़ाकर) क्या आमेर-नरेश इतना पामर, नीच, कायर और चाण्डाल है कि स्वयंवर-युद्ध में हारकर भी, उस क्षत्रिय बाला के प्रति हृदय में दुर्भावना रखता है, जो एक-दूसरे पुरुष की विधिवत् पत्नी बन चुकी है?

आमेर-नरेश—सामर्थ्यवान् के लिये सब कुछ उचित और क्षम्य है। साथ ही प्रेम और युद्ध में प्रत्येक उचितानुचित कार्य, कर्त्तव्य, उत्तम एवं सम्भाव्य है। यदि तुम्हारी प्राप्ति का निर्णय अब तक स्वयंवर-युद्ध में व्यक्तिगत शक्ति पर निर्भर रहा है तो अब सैनिक शक्ति पर रहेगा।

किरण—(कटार तानकर) अच्छा तो ले नीच संभल। पति के पूर्व पत्नी से युद्ध कर। मैंने तुझे अपनी छोटी बहन का पति समझकर, कुछ-कुछ क्षमा तथा औदार्य का पात्र माना था, किन्तु अब मालूम हुआ कि तू पामर और नीच है और है दण्डनीय तथा वध-योग्य जो एक पवित्र-हृदया परपत्नी के प्रति दुर्भावना रख, राजवैभव में चूर हो, उद्दण्डता से पाशविक आक्रमण करता है।

ऐसा कहते-कहते किरणमयी रोष से रण-चण्डिका बन गई और अपने कटार वाले हाथ को ऊँचा उठाकर, प्रहार करने के लिये पैंतरा बदलने लगी। जब उसकी यह दशा दूर से ज्योतिमयी ने देखी तो वह झपट कर उसके निकट पहुँची और उसके कटार वाले हाथ को पकड़कर, बड़ी अनुनय-विनय के साथ ज्येष्ठ भगिनी को ऐसा करने से रोकने लगी। उस समय उन दोनों में निम्न प्रकार से वार्तालाप हुआ :—

"मुझे छोड़ दो बहन ! यह नराधम बिना उचित दण्ड भोगे नहीं बच सकता।"

"बहिन किरण ! कृपया मेरे सुहाग की रक्षा करो। मेरे यह महँदी में रचे हुये हाथ देखो और देखो नव नथ-वेधित नाक तथा कंकण से युक्त कलाई को। विवाह के साथ ही साथ अपनी इस प्यारी बहन को विधवा बनाकर मत बिठाओ। अच्छी ज्येष्ठ बहन, मैं तुम्हारी शरण हूँ।"

"बहन ! इस मूर्ख ने जो पाप किया है, न्यायानुसार उसका दण्ड इसे अवश्य भोगना चाहिये। यह दुष्ट क्षत्रिय नहीं, कायर, नीच और पापी है।"

"मैं इनका अपराध स्वीकार करती हूँ और न्यायानुसार इन्हें दण्ड का पात्र भी मानती हूँ; किन्तु फिर भी यह प्रार्थना है कि अपनी प्यारी छोटी बहन के वैधव्य-संकट का विचार करके और इस बात का ध्यान करके कि स्त्री का सर्वस्व पति ही हुआ करता है, जिसके बिना वह

जीती हुई भी मृतक-तुल्य है; इनको अपने औदार्य के कारण क्षमा कर प्राण-दान दे दो।"

"किन्तु इसने एक क्षत्रिय बालिका का पवित्र हाथ दुर्भावना से स्पर्श कर दूषित किया है। इसका दण्ड तो इसे मिलकर ही रहेगा।"

"यदि इनको दण्ड ही देना है बहन! तो अवश्य दो, किन्तु इनका सिर झाड़ने से पूर्व, अपनी प्यारी अनुजा का सिर भी उतार लो, ताकि जिस बहन को तुमने अपने ही समान समझा है, वह वैधव्य-संकट से मुक्त हो जाय।"

"अच्छा ठीक है; मैं समझ गई, यह दंड इस पामर के मिस तुझ निर-पराध बालिका को मिल रहा है, जो सर्वथा अनुचित है। अस्तु, मैं इस पामर को छोड़कर, तेरे सौभाग्य-सिन्दूर को सुरक्षित रखती हूँ और इस अपकृत्य का प्रायश्चित दूसरे प्रकार से करती हूँ।"

इतना कहकर उसने अपना कटार वाला हाथ, ज्योतिमयी के हाथ से झटककर छुड़ा लिया और अपने बाएँ हाथ को फैलाते हुए तथा उसको अपने कटार के आघात का लक्ष्य बनाते हुए, उस कटार को फिर ज़ोर से तान लिया। ज्योतिमयी ने फिर सजल नेत्र करके, जिज्ञासा के रूप में, उसका हाथ पकड़कर प्रश्न किया—

ज्योतिमयी—प्रिय भगिनी! अभय-दान देने के पश्चात्, अब इस कटार को तानने का क्या प्रयोजन रह गया? अब इस रण-तत्परता का और क्या उद्देश्य शेष है?

किरणमयी—अब यह इस अपवित्र किये गये हाथ को इस पवित्र देह से पृथक् करने के विचार से ताना गया है। यह मेरा बायाँ हाथ ही इस आघात का लक्ष्य है।

अल्पकाल के अन्तर्गत ही, किरणमयी के इस प्रकार बिगड़ने का सम्वाद बाहर तक फैल गया। महाराज छत्रसाल ने भी उसे सुना और वे उसे संकट का समय समझ तत्काल राजमहल की ओर को चल

पड़े। महलों में पहुँचकर बूँदीपति ने, अपने दायें हाथ से खंजर तान-कर बाएँ हाथ को उसका पूर्ण लक्ष्य बना, उसे स्व-शरीर से पृथक् करने के लिये किरणमयी को उद्यत पाया, और देखा कि ज्योतिमयी उसे रोकने की चेष्टा में व्यस्त है।

बूँदी-नरेश ने किरणमयी के उच्च एवं पवित्र भाव तथा आदर्श की सराहना करते हुए, उसको सम्बोधन करके कहा, "धन्य-धन्य देवी किरण, मैं तुझको पत्नी रूप में पाकर, महा सौभाग्यशाली और परम धन्य हूँ। वास्तव में तुम एक महान् आदर्श रमणी हो। अब मेरी आज्ञा से तत्काल अपने खंजर को म्यान में रख लो। तुम्हारे विचारों की पवित्रता ने, तुम्हारे सारे शरीर को ही अलौकिक रूप से पवित्र कर दिया है। तुम्हारे पवित्र हाथ के स्पर्श से, आमेर-नरेश का अपवित्र हाथ, स्वयं उसी प्रकार से पवित्र हो गया है, जिस प्रकार पवित्र गंगा-जल के स्पर्श से, किसी महा पापी पिशाच की दूषित देह। जिस प्रकार पातकी के स्पर्श से गंगा-जल की पवित्रता नष्ट नहीं होती, ठीक उसी प्रकार तुम्हारे हाथ की पवित्रता को, उस समय तक, जब तक कि तुम्हारे विचार स्वयंमेव दूषित नहीं हैं, संसार की कोई शक्ति नहीं छीन सकती। अतः आमेर-नरेश तुम्हारी दया के पात्र हैं। मेरे अनुरोध से इनको, बिना शर्त, पूर्णतया क्षमा प्रदान करो।"

किरणमयी—पूर्ण क्षमा तभी मिलेगी देव ! जब आमेर-नरेश स्वयं मुझ को भगिनी कह कर क्षमा माँगेंगे।

छत्रसाल—इनकी तरफ से मैं क्षमा माँगने को तैयार हूँ।

ज्योतिमयी—बहन ! क्या मेरी क्षमा-याचना काफी नहीं है ?

आमेर-नरेश—अच्छा बहन ! मैं अपने कार्य पर लज्जित हूँ, मुझे क्षमा करो।

इसके पश्चात किरणमयी ने अपने खंजर को म्यान में कर लिया। अगले दिन दोनों बरात अपने-अपने स्थान को विदा हो गईं। आमेर-

नरेश ज्योतिमयी को लेकर सदल-बल ग्रामेर को चले गये । इधर बूँदी-नरेश महाराव छत्रसाल जी वीरांगना किरणमयी का लेकर बूँदी को रवाना हुए ।

हाड़ा तलवार की परीक्षा हो जाने पर इसी समय एक शुभ अवसर और आया, जबकि किरणमयी की चचेरी बहन और सहेली राजबाला की शादी इन्द्रगढ़-नरेश मौकमसिंह के साथ सम्पन्न हुई ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल का समय है। सूर्य भगवान् अपने शयन-कक्ष से उठकर अपनी निश्चित यात्रार्थ प्रस्थान कर चुके हैं। आज का दिल्ली नगर अनुपम शोभा को प्राप्त है। हाट, बाट और बाज़ार सजे हुए हैं। हर जगह नगर में बड़ी चहल-पहल है। लाखों रुपये का लेन-देन, क्रय-विक्रय आदि अनेक प्रकारों से व्यापार-कार्य चल रहा है। दिल्ली भारत का प्राण है और दिल्ली का प्राण है चाँदनी चौक। इसी चाँदनी चौक के पूर्वी छोर पर लाल किला अपनी और अपने निर्माता सम्राट् शाहजहाँ की महत्ता को प्रकट कर रहा है। लाल किले के अन्दर दीवाने-ख़ास और दीवाने-आम दर्शनीय सभा-भवन हैं। वहाँ पर प्रायः बादशाह के दरबार लगा करते हैं। आज भी दीवाने-खास में विशेष सरदारों का एक दरबार लगा है। जब से आमेर से आकर सम्राट् ने इस बार यहाँ निवास किया है, इसे पहला ही दरबार समझिये। एक तरफ को उच्चतम मञ्च पर 'तख्ते-ताऊस' नामक शाही सिंहासन रक्खा हुआ है। उस पर भारत-सम्राट् शाहजहाँ विराजमान हैं। मुसाहिब लोग सामने कर बाँधे खड़े हुए हैं। अन्य सरदारगण भी यथोचित रूप में अपने-अपने स्थानों पर अवस्थित हैं। शाहजहाँ और प्रधानमंत्री तहव्वर खाँ में निम्न प्रकार से वार्तालाप हो रहा है—

"चन्द दिन से जनाब आमेर-महाराज जगतसिंह दरबार में दिखाई नहीं दे रहे हैं। क्या बात है?"

"बन्दापरवर ! जनाब आमेर महाराज साहब के दुश्मनों की चन्द दिनों से तबियत नासाज़ है।"

"शादी के बाद ही यह नासाजगी! यह तो बड़े ताज्जुब की बात है!"

"इसकी एक खास वजह है सरकार! एक वाक़ये ने उनके दिल को बड़ा सदमा पहुँचाया है।"

"क्या स्वयंवर की जंग की हार और राजकुमारी किरण के छिन जाने से ऐसा हुआ है ?"

"नहीं, सरकार ! इससे भी एक बड़े हादसे से उनके दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं।"

"यह हादसा क्या है और कैसे उरुज़ में आया ?"

"जंगे स्वयंवर के बाद रूपनगर के राजमहल में हाड़ा महाराव की किरणमयी के साथ और आमेर महाराज की ज्योतिमयी के साथ शादियाँ हो गईं··· ।"

"उनसे क्या ? वे तो हमारी मौजूदगी में ही हुई थीं ?"

"मगर बन्दापरवर के वहाँ से चले आने के बाद आमेर महाराज के पलकाचार की रस्म पर किरण और आमेर महाराज में झगड़ा हो गया।"

"यह सब कुछ हो जाने के बाद किरण के साथ आमेर महाराज का क्या ताल्लुक रहा ?"

"हुज़ूर ! आमेर महाराज ने अपने पलकाचार के मौके पर मज़ाक ही मज़ाक में किरणमयी का हाथ पकड़ लिया। इस बात पर वह इस क़दर बिगड़ी कि तलवार निकाल कर महाराज के क़त्ल के लिये आमादा हो गई। जब उसकी बहन ज्योतिमयी और हाड़ा महाराज ने समझाया तो उनको तो छोड़ दिया, पर फिर अपना हाथ काट डालने का हठ करने लगी। आखिर मजबूर होकर आमेर महाराज को उससे धर्म की हमशीरा कहकर माफ़ी माँगनी पड़ी, तब कहीं उन्हें माफ़ किया

गया। उसी बेइज़्ज़ती का सदमा आमेर-महाराज की तबियत को आज तक नासाज़ व परेशान कर रहा है।"

"बड़ी ग़ैरतमन्द और दलेर लड़की है, किरण! शाबाश!!"

"मगर आमेर महाराज का तो हुज़ूर! उसने सारा ही पानी झाड़ दिया।"

"लेकिन आमेर महाराज को ऐसी क्या पड़ी थी कि··· ?"

"वाह, गरीबनवाज़! किरणमयी पर तो आमेर महाराज जी-जान से फ़िदा हैं और स्वयंवर की लड़ाई के बाद तो उनका हाल-बेहाल ही हो गया है।"

"अच्छा, तो जनाब की नासाज़गी तो बड़ी मज़बूत बुनियाद पर कायम हुई है। क्या किरणमयी कोई निहायत नायाब व हसीन लड़की है?"

"क्या कहिये, हुज़ूर! निहायत नायाब फूल है। गोया सितारों में महताब कहिये!"

इसी समय आमेर-नरेश के दरबार में पधारने की सूचना शाहंशाह को प्राप्त हुई। शाहजहाँ ने आमेर-नरेश को उचित स्वागत के साथ अपने हुज़ूर में बुलाया। आमेर-नरेश ने भी सम्राट् का यथोचित अभिवादन किया। इसके अनन्तर बादशाह और आमेर-नरेश में थोड़ी देर तक किन्हीं राजनीतिक विषयों पर विशेष वार्तालाप होता रहा। सम्राट् की अभिरुचि के साथ वे भी विषय-विश्लेषण में संलग्न हुये।

इसके पश्चात् आमेर-नरेश अपने निश्चित स्थान पर बैठ गये। इसी समय शेरशाह रुहेले ने विषय बदल कर किरणमयी द्वारा आमेर-नरेश के अपमान की घटना पर प्रकाश डालकर उसकी गम्भीर विवेचना की। उसके वक्तव्य का मन्तव्य निरन्तर यही रहा कि आमेर-नरेश का अपमान हाड़ा-नरेश की सम्मति से उन्हीं की शै पाकर हुआ है। इसीलिये हाड़ा नरेश को, इस अपमान-जनक कार्य से दूर समझ लेना मानो घटना का आधार भंजन करना है।

शाहजहां को इस विषय में अधिक अभिरुचि रखना उचित प्रतीत नहीं हुआ। अतः उन्होंने आराम के बहाने दीवाने-खास को छोड़कर अन्तःपुर को प्रस्थान कर दिया। सरदारगण अपने-अपने स्थान पर बैठकर इधर-उधर की वार्तालाप में संलग्न हुये। शाहजहाँ का उस विषय के छिड़ने पर उठ जाना, जिसने आमेर-नरेश के मन में हाड़ा-नरेश के प्रति स्पर्धा के भाव जागृत कर उन्हें आवेश दिलाया शायद कोई राजनीतिक चाल हो। नवाब रुहेला का कूटनीति-पूर्ण व्यवहार प्रमाणित करता है और सम्भावना उत्पन्न करता है कि शायद यह सब शाहजहाँ के संकेत पर ही हुआ हो। कारण कि इस समय तक के अनुभव से, भारत के मुग़ल सम्राट् यह निश्चित रूप से समझने लग गये हैं कि यदि वे भारत में शासन-सूत्र संचालन में सफल होना चाहते हैं तो उन्हें उस राजपूत शक्ति को अवश्य विभाजित करके अपने अधीन करके रखना चाहिये जिसे उस समय की अत्यन्त महान् शक्ति कहना होगा। किन्तु महान् शक्ति होने पर भी वह पारस्परिक ईर्ष्या द्वेषवश अपना एकीकरण न कर, मदान्ध रूप से यत्र-तत्र बिखर कर विजातीय और विधर्मी यवनों के हाथ की कठपुतली बन उनके पृष्ठ-पोषण के निमित्त ही अपना सर्वनाश करती रही है।

नवाब रुहेले ने आमेर-नरेश के आवेश के स्वर्णावसर से यह सोच कर लाभ उठाना चाहा कि जब लोह गर्म हो, तभी उस पर प्रहार करना चाहिये और सम्भवतः शाहजहाँ भी यही अनुभव करके अपने प्रतिनिधि को, विशेष वार्तालाप करके, विषय में प्रगति करने के लिये ही, उस सुअवसर पर छोड़कर आप पृथक् हो गये। सुन्दर सुयोग पाकर शेरशाह ने आमेर-नरेश के साथ निम्न प्रकार से वार्तालाप आरम्भ किया—

"महाराज! निरादर तो हुआ जनाब का मगर तकलीफ पहुँची है बन्दे के दिल को। क्योंकि बन्दा जनाब का गहरा दोस्त है और जनाब में खास दिलचस्पी रखता है।"

"नवाब साहब ! आप जैसे वीर पुरुष को मित्र बनाकर मैं अपने आपको अत्यन्त गौरवान्वित हुआ समझता हूँ। आप ही एक ऐसे अभिन्न-हृदय सुहृद हैं जिनसे कि मैं अपने हृदय की व्यथा दिल खोल कर कहने का साहस कर सकता हूँ; अन्यथा किसी न किसी कारणवश अपने हार्दिक भाव सब ही से छिपाने पड़ रहे हैं। अपने प्रजावर्ग, सरदारों और परिवार में तो इस घटना की चर्चा करना संकोच, नहीं-नहीं, घोर अपमान का विषय बन गया है। यदि सम्राट् के दरबार में किसी पर व्यक्त किया जाता है तो लाभ कुछ नहीं केवल अपना ही और अधिक परिहास है। अतः उस उक्ति के अनुसार कि मेले का हारा और औरत का मारा, कहे तो क्या और कहे तो किससे ? अब चुप ही रहना पड़ता है। किन्तु बिना किसी पर हृदय के भाव प्रकट किये काम भी नहीं चलता। मस्तिष्क परेशान रहता है और जी घबराया करता है। ऐसी अवस्था में उक्त समस्त समस्या के फल-स्वरूप आप सदृश अवसरोपयोगी मित्र मिल गये, यह हमारा परम-सौभाग्य है। असल बात तो यह है नबाब साहब, कि अब हमारी किरण को पाने की इच्छा बिल्कुल नहीं रही है। अब तो केवल बदला लेने की ज्वाला दिल में धधक रही हैं।"

"खुदा को हाज़िर-नाज़िर जानकर और कलामे-पाक की क़सम खाकर अर्ज़ है कि जनाब के पसीने की जगह खून बहाकर भी बन्दा अपनी सच्ची दोस्ती का सबूत मुहैया न करे तो रुहेला पठान नहीं।"

"तो इस राजपूत के इन वचनों को भी प्रमाण समझिये कि यदि आप मेरा हित चिंतन करेंगे, तो एक मित्र के नाते मैं भी आपके लिये प्राण तक देने को तत्पर रहूँगा। अब तक की जो मित्रता है, उसे और भी अधिक घनिष्ट बनाने के विचार से लीजिये मैं अपनी पगड़ी उतार कर आपको पहनाता हूँ और आपकी मैं स्वयं धारण करता हूँ, ताकि हम पगड़ी-पलट मित्र बन जायँ और सदा इसी रूप में बने रहें।"

इतना कहकर आमेर-नरेश ने अपनी पगड़ी उतार कर शेरशाह

को पहना दी और शेरशाह की पगड़ी अपने सिर पर रख ली। इसके पश्चात् दोनों मित्र सीने से सीना मिलाकर गहरे आलिंगन में आबद्ध हुए। इस प्रकार से वे घनिष्ट मित्रता के अकाट्य सूत्र में परिबद्ध हो गये।

बादशाह शाहजहाँ के परम मान्य सामन्त शेरशाह की मित्रता को प्राप्त करके, आमेर-नरेश ने उसे अपने व्यक्तित्व के विस्तार के विचार से एक सौभाग्य-सूचक कारण ही समझा और इसको भावी उपलब्धि का कारण जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। फिर इस हर्ष के अतिरेक में उनमें प्रस्तुत प्रयोग पर निम्न वार्तालाप हुआ।

"हाँ, नवाब साहब! जैसा कि मैं अभी कह रहा था, अब मेरी इच्छा किरण को अपनाने की तो रही नहीं है, किन्तु मैं इस अपमान का किरण और हाड़ा नरेश से बदला अवश्य लेना चाहता हूँ। पर यह मेरी समझ में नहीं आता कि वह बदला किस प्रकार से लूं। इसी चिन्ता में घुल रहा हूँ।"

"घुले जनाब की बला! खादिम के रहते जनाब को किसी तरह के फिक्र करने की ज़रूरत नहीं है। आप इस काम को बन्दे के ऊपर छोड़ें और तब देखें तमाशा खादिम की नाक़िस अक्ल का, कि हाड़ा नरेश को, बन्दा बदले की शक्ल में किस शान से नाकों चने चबाता है।"

"मित्र! मैं आपकी किस प्रकार प्रशंसा करूँ। आप मेरे परम हितैषी स्वजन हैं किन्तु फिर भी सन्तोष के विचार से आप अपनी उस योजना को विस्तार के साथ मेरे सामने रखकर, मेरे इस दग्ध हृदय को सान्त्वना प्रदान करें, जिससे आप हाड़ा-नरेश को मुँह की खिलाना चाहते हैं। कारण कि इस दिल की हालत यह है कि 'कुठौर काटी और ससुर वायगी'। इस समय इसको किसी तरह तसल्ली नहीं हो रही है।

आमेर-नरेश को अत्यन्त उत्सुक जानकर, शेरशाह ने कुछ देर सोच कर अपनी योजना की रूपरेखा, पहले अपने दिल में तैयार की और फिर आमेर महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दी। योजना का

औचित्य परख कर आमेर-नरेश फूले न समाये। कारण कि शाहन्शाह की अनुमति के बिना, उन्होंने बून्दी-नरेश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने में अपने आपको असमर्थ पाया; इसके अतिरिक्त ऐसी परिस्थिति में बदला लेने का और कोई ढंग उन्हें सूझा ही नहीं। अतः इस योजना ने उनके हृदय में घर कर लिया और उन्होंने सन्तोष का साँस लिया। दरबार से लौटते समय वे इतने प्रसन्न थे मानो उन्हें कोई बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हो गई है।

सोलहवाँ परिच्छेद

परम सुहावनी वर्षा ऋतु का आगमन हो गया है। ग्रीष्म ऋतु की तपन, आंधी और तूफ़ान शान्त हो गए हैं। युद्ध, विप्लव और रक्तस्राव-रूपी ज्वालामयी उष्णता अपनी समाप्ति के साथ-साथ ही, कष्ट और अशान्ति की तपन का अन्त कर गई है। अब सन्धि, मिलन और प्रेम-रूपी वर्षा ऋतु ने आकर, एवं सुख-शान्ति की मनभावन सघन घटा और रिमझिम-रिमझिम बूँदों के झरने तथा साहस और स्फूर्ति की शीतल वायु के झोंकों ने, दृश्य को परम आकर्षक बना दिया है। ग्रीष्म-काल के सूखे और मुरझाये हुए हृदयों में वर्षा-व्यारि नव-जीवन का संचार कर रही है। चिन्ता-व्यथा की धूलि पर धूल पड़ गई है। प्रमुदित-वदन पृथ्वी ने हरियाली तीजों का आनन्दोत्सव मनाने के विचार से, हरी बानात की पोशाक धारण कर ली है। हरियाली का हर तरफ बोलबाला है। हरी-हरी फ़सल और पौधों से आच्छन्न कृषकों के खेत हरे-हरे दिखाई पड़ रहे हैं। हर्षित हृदय वाले हरित-वर्ण मयूर, हरे-हरे वृक्षों पर अथवा हरी-हरी झाड़ियों में विचरकर आनन्दमय नृत्य कर रहे हैं। कलिसिरा कण्ठकली कोकिला का 'कूकू-कूकू' का कलरव और प्रेम-प्रमत्त पपीहे की 'पीउ-पीउ' की पुकार, समस्त विरही प्रेमियों की वियोग-व्यथा का व्यापक प्रभाव प्रकट कर रहे हैं। भावना-पूर्ण कवि-हृदय भ्रमरों की गम्भीर गुँजार और चंचल-चित्त चहचहाने वाली

चिड़ियाओं का स्नेहशीलता से चमत्कृत सुन्दर संगीत, हृदय में एक प्रकार की उमंगों के द्वारा उमड़ी हुई हूक उत्पन्न कर रहा है। प्रकृति मादकता की मदिरा पीकर मदमस्त हो अपने प्रियतम मदनदेव के साथ मोहमयी केलिक्रीड़ा में निमग्न है। श्रावण का शोभनीय सुन्दर मास, हृदयों को हर्षित करने वाले शुभ सन्देश को लेकर, एक दिव्यदूत की भाँति आया है जिसमें, सब प्रकार से अमृतानन्द की वारि वर्षा हो रही है। अनुरक्ति के झूले पर प्रेम-परिणायक प्रेमी जन संयोग के हिंडोलों पर मिलन और बिछोह की पेंग बढ़ा रहे हैं।

ऐसे स्फूर्तिदायक समय में युवकों का तो कहना ही क्या, वृद्ध पुरुष तक भी यौवन के उन्माद में प्रवृत्त हो प्रेम का मद्यपान कर, कामेच्छा से पीड़ित कास्तूर्य्य कृष्णसार बन, वाञ्छित वस्तु की खोज में परिभ्रमण करने लगे हैं।

ऐसी ही एक सन्ध्या के समय दासी मुरादन को साथ लेकर, सम्राज्ञी मुम्ताज़ बेग़म, वायुसेवन के विचार से, प्राकृतिक दृश्यों का भव्यानन्द लेती हुई अपनी विपुल वाटिका में परिभ्रमण कर रही है। इसी समय किंचित् विशेष कार्यवश, बून्दी-नरेश छत्रसाल का भी उस ओर आगमन हो गया है। अकस्मात सम्राज्ञी और बून्दी-नरेश का साक्षात्कार हो जाता है। बून्दी-नरेश की उपस्थिति को इस निर्जन उद्यान में अपने निकट देख कर, मुम्ताज एक झरने के निकट, एक संगमरमरी पत्थर की शिला पर विराजमान हो जाती है और मुरादन को भेजकर महाराव को अपने समीप बुलवाती है। मुरादन बून्दी-नरेश को बेगम के निकट पहुँचाकर किसी बहाने से उन्हें अकेले छोड़कर प्रथक् हो जाती है, जैसे यह उनकी पूर्व नियोजित योजना हो।

बून्दी-नरेश निकट पहुँच, विधिवत् अभिवादन के पश्चात् इस तरह वार्तालाप में संलग्न होते हैं—

छत्रसाल—सेवक के लिए क्या आज्ञा है, सम्राज्ञी ?

मुम्ताज़—मुझे जनाब से खास तौर पर कुछ अर्ज़ करना है, मगर किन अलफाज़ में अपने खयालात का इज़हार करूँ, यह समझ ही में नहीं आता। कुछ झिझक सी लगती है।

छत्रसाल—आपत्ति क्या है सम्राज्ञी! सेवक को परम आज्ञाकारी समझ कर निःसंकोच भाव से आदेश दें।

मुम्ताज़—ठीक है। मगर सबसे पहली बात तो यही है कि मैं तुम्हारे मुँह से यह अलफ़ाज़ नहीं सुनना चाहती जिनको तुम इस वक्त इस्तेमाल कर रहे हो।

छत्रसाल—हैं! मैं कौनसे अनुचित शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ, बेगम साहिबा? आप क्या नहीं सुनना चाहतीं?

मुम्ताज़—'सेवक', 'आदेश', 'आज्ञा', 'आज्ञाकारी' और 'सम्राज्ञी' वगैरा मुझको ज़रा भी अच्छे नहीं लगते।

छत्रसाल—तो कौन से अच्छे लगते हैं, बेगम साहिबा? किन शब्दों के साथ आपको सम्बोधन किया जाये?

मुम्ताज़—'प्यारी', 'महबूबा', 'दिलजानी', और 'नूरेनज़र', 'सम्राज्ञी' या 'बेगम साहिबा' की जगह और 'आदेश' या 'आज्ञा' की जगह बोलो नाज़', 'मुँह खोलो हुस्न', 'खिलो दिल के फूल', 'बहको मेरी बुलबुल', 'चहको मेरी चिड़ी', 'चमको मेरे चाँद', 'महको मेरे गुल' वगैरा ही वह खुशदिल अलफ़ाज़ हैं जिन्हें मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूँ। बूँदी-धनी! आप बोलते क्यों नहीं? किस ग़म में मुबतला हो गये?

छत्रसाल—मैं सोचता हूँ कि, आख़िर आप यह कह क्या रही हैं बेगम साहिबा! मैं बिल्कुल नहीं समझा। कारण कि ऐसे शब्द तो श्रीमती के लिए केवल श्रीमान् सम्राट् ही प्रयोग कर सकते हैं अन्य नहीं।

मुम्ताज़—क्यों, डरते हो क्या? मैं तुम्हें तुम्हारे सम्राट् से भी ज़्यादा मानती हूँ और उनके बराबर ही ऊँचा पहुँचाना भी चाहती हूँ। वे मेरी उंगलियों पर गुड्डी के मानिन्द नाचते हैं, मगर मैं बन जाना चाहती

हूँ गुड्डी तुम्हारी ! यह मेरी बहुत दिन की जुस्तजू है।

छत्रसाल—किन्तु बेगम साहिबा···?

मुम्ताज़—नहीं ! किन्तु-इन्तु कुछ नहीं !! घबराहट से पशो-पेश की कोई जरूरत नहीं।

छत्रसाल—घबराता या डरता तो यह राजपूत काल से भी नहीं है, पर···

मुम्ताज़—फिर वही पर ! अजी इस बेपर के पर से क्या फ़ायदा ? चलो, उठो, देर न करो, मेरे साथ-साथ आओ। ग़ौर तो करो, कैसा अच्छा सुहावना मौसम है। उधर तो ख्याल फ़रमाओ, वह मोर-मोरनी, कपोत-कपोती, चिड़ा-चिड़ी, वग़ैरा सभी जीव अपने दिलों को खुशी की उमंगों से भरे हुए, तरह-तरह के जशन, बाहम-वस्ल यानी आपस की केलि-क्रीड़ा में मुबतला है। बाग़ों में खुशबूदार फूल खिल-खिलकर, पराग उँडेल, नींद में सोये हुए मदन को जगा रहे हैं। जोबन से भरी हुई कुदरत कोयल की 'कूकू' और पपीहे की 'पीउ-पीउ' की बोली में वस्ल की माँग कर रही है। यही वजह है कि तुम्हारी मुहब्बत की भूखी कनीज़ा मुम्ताज़ भी उसी मर्ज़ की मरीज़ा हो दर्देदिल की कसकती हूक के सबब से तड़फड़ा रही है। आओ चलो ! तुम पर कुरबान जाऊं नाज़ ! रूठो नहीं, नख़रे न दिखलाओ !! चलो, चलकर ज़रा दिल बहलायें और खुशियों से लबरेज़ उसी जामे-वस्ल को पियें, जो जन्नत के मज़े की जीती-जागती तस्वीर है।

छत्रसाल—क्या सम्राट् शाहजहाँ, सम्राज्ञी की इस लिप्सा को पूरा करने के लिये पर्याप्त पात्र नहीं हैं ?

मुम्ताज़—जिस तरह कण्ठ की प्यास बुझाने को साफ पानी और दिमाग की प्यास बुझाने को तेज़ शराब की ज़रूरत होती है, महज़ खाली घड़े या बोतल की नहीं, उसी तरह दिल की हुड़क बुझाने के लिए तमन्नाए-वस्ल से लबरेज़ गुल की मुहब्बत दरकार होती है,

खाली व खुश्क जिगर की नहीं।

छत्रसाल—क्या सम्राट् के हृदय में, सम्राज्ञी के लिए प्रेम-रस का सागर हिलोरें नहीं लेता अर्थात् क्या वे श्रीमती को प्रेम नहीं करते ? सम्राज्ञी के लिए उनका प्रेम तो एक उदाहरण कहा जाता है।

मुम्ताज़—वे करते तो सब कुछ हैं और हैं भी बन्दी पर जी-जान से फिदा। मगर उनकी सारी कुर्बानी, मुहब्बत, और जाँफ़िशानी में मुझे कहीं जन्नत की वह शै नसीब नहीं हो रही है, जिसकी मुझे अज़हद तलाश है और है वाकई ज़रूरत। इसी वजह से भूल-भटक कर, वास्ते हाजत रफ़ा, मुझे आं जनाब की खिदमत में आना पड़ रहा है।

छत्रसाल—किन्तु जिस 'शै' का आप सम्राट् की मुहब्बत में अभाव पाती हैं, सम्राज्ञी ! वह मेरी मुहब्बत में मिल जायगी, इसका प्रमाण क्या ? और इस तरह की अज्ञानतावश आपने कल्पना भी कैसे कर ली ? मेरी किस चीज़ से आपको ऐसा विश्वास हो गया ?

मुम्ताज़—सब से बड़ा मुनसिफ़ इन्सान का दिल हुआ करता है। लिहाज़ा मेरा दिल यह गवाही दे रहा है कि बहादुर छत्रसाल जैसे तबीब की खिदमत में पहुँच जाने पर बन्दी के दर्देदिल की दवा ज़रूर हासिल हो जायगी।

छत्रसाल—और यदि ऐसी कोई औषधि मेरे पास न मिले, न रही हो या आगे न रहे, तो श्री शाहजहाँ की भांति श्रीमती किसी और वैद्य के टटोलने में लग जायंगी, क्यों ?

मुम्ताज़—इस बात की फिक्र या गम क्यों करते हो, बहादुर ! मुझे कामिल यकीन है कि ऐसा कभी नहीं होगा। मलकाये मोअ़ज़्ज़मा होकर भी मैं तुम्हारी पूरी खिदमत करूँगी। इस बात का इत्मीनान रक्खो।

छत्रसाल—नहीं सम्राज्ञी ! इन चीजों में मैं कोई लाभ या आकर्षण नहीं देखता। सारयुक्त आध्यात्मिकता को छोड़कर, ऐसी थोथी भौतिक मृग-तृष्णा अर्थात् शेखचिल्लीपन की विषैली वासना से मैं दूर ही रहा

करता हूं। मुझ से आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा।

मुम्ताज़—इससे तुम को किसी तरह का नुक्सान नहीं होगा, बहादुर ! मैं खुद कलाम-पाक की क़सम खाकर इस बात का ज़िम्मा लेती हूँ। खुदा ने औरत, मर्द दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनाया है। लिहाज़ा उनके लिए लाज़िम यही है कि मिल-जुलकर रहें और शर्बते-वस्ल पीयें।

छत्रसाल—किन्तु मेरी इस कमी को तो ईश्वर ने किरणमयी से पूरा कर दिया है, सम्राज्ञी ! और श्रीमती की कमी को पूरा कर दिया है सम्राट् शाहजहाँ से ? अतः यह पशुपन की प्रवृत्ति ईश्वर के साथ भी विश्वासघात है सम्राज्ञी बेगम ! मनुष्य की तो बात ही क्या ? यही कारण है कि मुझे यह प्रस्ताव जिससे ऐश्वर्य नियम, समाज की व्यवस्था, और मनुष्यत्व की मर्यादा का भंजन होता हो और इसके साथ ही मनुष्य को पशुत्व से ऊँचा उठाकर फिर उसी गर्त में गिराया जाता हो, किसी अवस्था में भी मान्य नहीं है, सम्राज्ञी !

मुम्ताज़—शाहजहाँ के हरम में मेरे अलावा और कितनी ही बीवियां भी तो मौजूद हैं। जब मर्द होकर वह खुदा के साथ गद्दारी कर सकता है तो फिर मेरे औरत होकर करने में क्या हर्ज है ?

छत्रसाल—किन्तु सेवक के महल में तो एकमात्र किरणमयी ही है और जब उसने अपना अमूल्य मन-माणिक, नहीं-नहीं, अपना सर्वस्व तक मुझे सच्चे दिल से सौंप दिया है तो, यह मुझे कहां तक उचित है कि मैं उसके साथ विश्वासघात करूँ, सम्राज्ञी ? यदि श्रीमती को अपने देव-तुल्य पति से कोई शिकायत है तो वे अपना जैसा कोई दूसरा व्यक्ति टटोलें; किन्तु मुझे अपनी पत्नी से कोई शिकायत नहीं, फिर मैं किसी अन्य स्त्री की कामना क्यों करूँ ? और इस पर भी वह अन्य स्त्री हो सम्राज्ञी ! नहीं ! कदापि नहीं !! तुम्हारे बैल हमारे भैंसा, हमारा-तुम्हारा साझा कैसा ?

मुम्ताज़—तो क्या आपका मतलब है कि······?

छत्रसाल—हाँ, सेवक अपने संयम को तोड़कर किसी भी अवस्था में इस घृणित प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। अपनी शुद्धता के लिए नहीं तो अपनी पत्नी की शुद्धता के ही लिये सही, औचित्य इसी बात में है। यदि ऐसा किया गया तो क्या सम्राट् के घर का अनुकरण मेरे घर में नहीं होगा?—होगा और ज़रूर होगा। क्योंकि दुराचारी पुरुषों की स्त्रियाँ सती तथा पतिव्रता नहीं हुआ करतीं और न संयमी पुरुषों की व्यभिचारिणी। यही कारण है कि सम्राट् की वासना को छोड़ देने के लिये आज स्वयं सम्राज्ञी प्रस्तुत हुई हैं। यह अपने-अपने सिद्धान्त तथा तदाधारित आदर्श की बात है। संसार में सभी स्त्री-पुरुष तो एक से नहीं हैं। इसी पृथ्वी पर शाहजहाँ के समान विलासी जीव भी हैं और इस सेवक के समान संयमी भी। प्रत्येक व्यक्ति के साथ सच्चरित्रता के विचार से अपने-अपने भिन्न-भिन्न धर्म-सिद्धान्त हैं और उनमें भी अपने-अपने विभिन्न दृष्टिकोण को लिये हुये विभिन्न आदर्श। मुग़ल सम्राट् के साथ उनका बहुपत्नीवादी—विषय-लोलुपता के दृष्टिकोण को लिये हुए—मुग़ल आदर्श है तो इस राजपूत के साथ न्याय, सत्य, संयम और त्याग के दृष्टिकोण एवं सिद्धांत को लिए एकपत्नीवाद का महत्तम क्षात्र आदर्श है। आपको अनुरागमयी अपनी भौतिक सभ्यता पर नाज़ है तो मुझे त्यागमयी अपनी आध्यात्मिक सभ्यता का अभिमान है।

मुम्ताज़—मर्द हर तरह के ऐबों से भरे होते हैं मगर बना करते हैं फिर भी सुर्ख़रू। मैं जानती हूँ तुम मुझे झुकता देखकर इस बात का नाजाइज़ फायदा उठाने के लिये अपने बड़प्पन की धौंस जमा रहे हो, बहादुर? खैर, कोई बात नहीं। मैं इसके लिए भी तुम्हें माफ़ कर दूँगी; क्योंकि मैं तुम पर मरती हूँ, तुम्हारी शख़्सीयत पर जी जान से फिदा हूँ और इस नाते अपने दिलदार पर सब कुछ कुर्बान कर सकती हूँ। साफ बोलो, मर्तबा चाहते हो क्या? मैं शाहन्शाह की लौंडी नहीं हूँ, शाहन्शाह

मेरा गुलाम है। लिहाजा मैं तुम्हें सारे आलम का ताजोतख़्त भी अता कर सकती हूँ। ज़रा मेरे होकर देखो तो सही।

छत्रसाल—किन्तु राजपूत अधर्मपूर्वक तीन लोक की वसुधा को भी लेने पर तत्पर नहीं हुआ करते, बेगम! इस पर भी दान ग्रहण करना तो उनके धर्म ही में नहीं है और वह दान भी एक चरित्र-हीना स्त्री का? क्षमा कीजिये सम्राज्ञी! आप अपनी दौलत को अपने ही पास रखिये। हमें हमारे निर्धनता के टुकड़े उससे लाख गुना बेहतर हैं।

मुम्ताज़—तुम मेरी बेबसी को देखकर भी मेरे साथ मज़ाक कर रहे हो, राजपूत?

छत्रसाल—इतनी गम्भीरतापूर्वक मैंने अपना आदर्श किसी के सम्मुख व्यक्त ही नहीं किया, सम्राज्ञी!

मुम्ताज़—तो क्या राजपूतों के दिल नहीं होता या उनके दिल में मुहब्बत का जज़्बा ही नहीं होता?

छत्रसाल—यह सब कुछ होता है, सम्राज्ञी! किन्तु धर्माधर्म का सुविचार करके।

मुम्ताज़—मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ फिर भी मेरा कुछ ख़याल न करोगे क्या, बहादुर!

छत्रसाल—आप से पूर्व मुझे अपने धर्म का ध्यान रखना पड़ेगा सम्राज्ञी! मेरा धर्म मुझे अपने उच्च राजपूत आदर्श और अपने महान् पूर्वजों के गौरव तथा सम्मान-रक्षा की आज्ञा देता है। अतः मैं सौदागरी की वैश्य-वृत्ति के प्रतिकूल अपने क्षात्र आदर्श पर ही अटल रहूँगा, चाहे कुछ भी क्यों न हो।

मुम्ताज़—और इस बात का भी ख़याल नहीं है कि मैं तुम्हारी शरण में आ रही हूँ और मुझे जो कुछ हुक्म करो वह करने का वायदा करती हूँ। शरण आने का मान तो रखना ही चाहिये, बहादुर!

छत्रसाल—पथभ्रष्ट और अधर्मी व्यक्ति के बलिदान एवं याचना का

भी कोई मूल्य नहीं हुआ करता, सम्राज्ञी !

मुम्ताज़—तो, तुम मेरी अर्ज़ क़बूल न करोगे, राजपूत ! क्यों ?

छत्रसाल—नहीं, कदापि नहीं, बेगम ! अन्यायपूर्ण इच्छा तो सम्राज्ञी की भी पूरी नहीं होगी ।

मुम्ताज़—मुम्ताज़ एक अदना औरत की हैसियत से जनाब से भीख देने की फरमाइश नहीं कर रही और न उसे ज्यादा हकीर होने की ज़रूरत ही है । जब तक मुग़ल तलवार में दम है और मेरी हिफ़ाजत पर वह तलवार है, तुमको मेरी ख्वाहिश पूरी करनी ही होगी । तुम से तुम्हारी खिदमात, मैं एक बादशाह की बेगम की हैसियत से, एक सामन्त का शाही खिराज समझकर हासिल करूँगी ।

छत्रसाल—मैं इस अनुचित प्रस्ताव का एक राज-विद्रोही होकर भी विरोध करूँगा, सम्राज्ञी ! कारण कि यह माँग सरासर न्याय की हत्या है और यदि न्यायाधीश ही अन्याय करने लगे तो फिर न्याय की रक्षा कौन करेगा ? राजा के अन्यायी होने पर प्रजा को पूर्ण अधिकार है कि वह न्याय को अपने हाथ में लेकर, उस अनुचित प्रथा के मिटाने के लिये समस्त सम्भव प्रकार से राजा का विरोध करे और बता दे कि प्रजा ने न्याय-रक्षार्थ ही शक्ति राजा को सौंपी है अन्यथा उसकी वह शक्ति उसी के पास सुरक्षित है ।

मुम्ताज़—मुम्ताज़ की ख्वाहिश को पूरी न करना गोया मौत को मदऊ करना है, बहादुर ?

छत्रसाल—मृत्यु की धमकी हम राजपूतों को कर्त्तव्यच्युत नहीं कर सकती । सम्राज्ञी को ज्ञात हो कि राजपूतों ने मृत्यु के स्वरूप को बड़ी अच्छी तरह से पहचाना है और वे उसका आलिंगन करने के लिये सर्वदा तत्पर रहते हैं । संसार की ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो मृत्यु का भय दिखा कर उन्हें कर्त्तव्यच्युत करा सके । वह शक्ति चाहे स्वयं सम्राट् की ही क्यों न हो । राजपूत होते हैं धर्म और आदर्श के प्रतिपालक । सिद्धान्त-प्रिय

अथवा सत्यप्रिय होने के कारण वे वैश्यों की भाँति सौदागरी नहीं किया करते, केवल प्राण का जुआ खेला करते हैं। वे यदि किसी से डरते भी हैं तो केवल न्याय, धर्म, सत्य और परमेश्वर से, अन्य किसी से नहीं।

मुम्ताज़—शै पाकर तुम इस क़दर बढ़बढ़कर बातें करते हो ? छोटा मुँह और बड़ी बात ! मगर याद रक्खो कि तुम को दो में से एक चीज़ ज़रूर दी जायगी—मेरा प्यार या तुम्हारी मौत। बोलो ! इन दोनों में से तुम कौन-सी चीज़ पसन्द करते हो, खूब सोचकर जवाब दो।

छत्रसाल—मौत ! मौत !! खूब सोच लिया, मौत !!! यदि सम्राज्ञी में देने की शक्ति है तो मौत दें। राजपूत मौत से खेलने को सदा तैयार रहते हैं।

मुम्ताज़—अच्छा मौत ! मुरादन ! अरी ओ मुरादन !! जा, आला-हज़रत को जल्द बुला कर ला, जो इस राजपूत को वाजिब सज़ा दें। इसने मल्काये मौज्जमा हुज़ूर पुरनूर माबदौलत को बद-नज़र से देखकर उनकी बेइज्जती की है। शाहंशाह आलम की बुलन्दी को ज़क पहुँचाकर ख्वार करने की कोशिश की है। इधर क्या देखती हो, जाओ ! जल्दी जाओ !! फौरन जाओ !!!

इसी समय एक व्यक्ति पीछे की झाड़ी में से निकला और आगे से मुरादन का मार्ग रोकता हुआ उसे डाट कर बोला, "ठहर लौंडी, अगर एक कदम भी आगे बढ़ाया तो अभी सर धड़ से अलग कर दूँगा।"

मुरादन उस तेज़ आवाज़ को सुनकर भय से थर-थर काँपने लगी और घबराकर अनायास ही कोर्निश की दशा में उसके पैरों पर गिर पड़ी।

उस युवक को देखकर मुम्ताज़ का शरीर लज्जा, ग्लानि और भय से काँप उठा और एक चीत्कार उसके मुँह से अकस्मात् ही निकल गई। बूँदी-नरेश ने भी उस नवयुवक को यथोचित सम्मान दिया। इसके पश्चात् वह युवक कुछ नम्र होकर क्षोभ से मुँह बिगाड़ता हुआ बोला, "अम्मीजान ! आपका यह चलन ! अफ़सोस ! सद्अफ़सोस !! खैर, आप

को माँ समझकर इस वक्त मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मगर यह मत समझना कि मैंने कुछ सुना नहीं। सारा हाल देखा है और सभी कुछ सुना है। मगर मैं इस वक्त तुम्हारी इससे ज्यादा रुसवाई करना ठीक नहीं समझता। हाँ, मगर इस बात का ध्यान रखिये कि अगर बूँदी महाराज को तुमने मुफ्त में बदनाम करने की कोशिश की तो, तुमको हद से ज्यादा ज़िल्लत उठानी पड़ेगी। जाओ, सीधी तरह से अपने हरम में चली जाओ।"

खड़ी-खड़ी मुम्ताज़ एक महान् अपराधी की भाँति सिर नीचा किये हुए अपने पैर के अँगूठे से भूमि को कुरेदती रही।

इसके पश्चात् वह वीर युवक छत्रसाल की तरफ मुड़ा और उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "बूँदी-महाराव साहब ! आप अज़ीमोश्शान हैं। आपके वसी ख्यालात होने का तो मुझे पहले भी यकीन था और इसी नाते मैं जनाब को और दूसरे सरदारों से ज्यादा ताज़ीम देता था, मगर यह इल्म मुतलक़ नहीं था कि आप कयास से भी इतने ज्यादा अजीमोश्शान होगे। आइये ! मेरे साथ आइये !! किसकी ताब है कि शाहजादा दाराशिकोह और उसके हाथ में उसकी तलवार के रहते, आप जैसे दरिया-दिल बहादुर की तरफ कोई आँख उठाकर देखने का हौसला भी कर सके।"

इतना कहकर वह युवक महाराव छत्रसाल को अपने साथ लेकर चल दिया और अपने महल की तरफ को रवाना हो गया।

पाठक ! अब आप इस नवयुवक से परिचित हो गये होंगे। यह सम्राट् शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र और साम्राज्य के युवराज शाहजादा दाराशिकोह हैं। अपने पिता के अत्यन्त लाडले और आमेर आदि राजपूत नरेशों के अत्यन्त कृपा-भाजन होने के कारण, ये साम्राज्य में इतने प्रभावशाली व्यक्ति हैं कि दुनिया में इनकी आज्ञा को कोई नहीं टाल सकता। स्वयं सम्राट् शाहजहाँ ने भी इन्हें कतिपय अधिकार सम्पूर्ण रूप से सौंप

रक्खे हैं और वे प्रत्येक राज्य-कार्य में श्री सम्राट् का हाथ बटाया करते हैं। वही युवराज दाराशिकोह आज बूँदी-नरेश की सच्चरित्रता-पूर्ण घटना को स्वयं अपनी आँखों से देखकर, उनके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं और विशेष रूप से उनकी ओर आकर्षित होकर, उन्हें असाधारण सम्मान देने का निश्चय कर चुके हैं।

सत्रहवाँ परिच्छेद

"बूंदी-महाराव साहब ! आपकी बहादुरी, दलेरी और हिम्मत काबिले-दाद है और काबिले-तारीफ़ है जनाब की सती बीवी राजकुमारी किरणमयी की पाकीज़गी। हम आप दोनों की, नमूना होने के नाते, क़दर करते हैं।

"यह सम्राट् की उदारता एवं गुणग्राहकता है, नहीं तो हम पति-पत्नी केवल सामान्य स्त्री-पुरुष हैं।"

"जो शौहरत आप लोगों ने अपने आला इम्तहानों में कामयाब होकर हासिल की है वह मामूली नहीं, निहायत नायाब है। हमारे दिल में तुम लोगों की बड़ी इज्जत है।"

"सम्राट् महोदय ! यदि सेवक में कोई महानता है भी, तो वह भी श्रीमान् की ही अनुकम्पा के कारण है।"

"नहीं, नहीं, हम तुम दोनों शौहर-बीवी की शख्सियत को अपनी शख्सियत से भी आला और अफ़जल समझते हैं। तुम जैसा दुनिया में कोई नमूना नहीं है; तुम्हारी औरत भी, औरत-जमात में इस तरह है जैसे तारों में चाँद।"

"खुदावन्द ! हम बूंदी महाराव साहब व उनकी रानी साहिबा के किसी तरह बदख्वाह नहीं हैं। मगर खुद हिन्दुस्तान के बादशाह के मुँह से अपने एक मामूली सामन्त की इस तरह की तारीफ़ नहीं सह सकते, क्योंकि यह इन्सानियत और बादशाहत दोनों की तौहीन है।"

"क्या तुम्हारी नज़र में महाराव छत्रसाल की दलेरी और बहादुरी में और उनकी रानी की पाकीज़गी में काबिले-तारीफ, गैरमामूली व अजीबो-गरीब बात नहीं ?"

"ठीक है, इसके लिये बादशाह ने खिलअत बख़्श दी है, और भी कोई ऊँचे से ऊँचा इनाम दे सकते हैं, मगर खुद भाँड बनकर उनकी विरद तो नहीं बखान सकते। अगर ऐसा होगा तो दीगर सामन्तों पर इसका क्या असर पड़ेगा ?"

"क्या गैर-मामूली सिफ्त की तारीफ़ करना इन्सान की ख़ासियत में नहीं है ?"

"क्या खुदावन्द राजकुमारी किरणमयी को गैरमामूली औरत समझते हैं ?"

"क्या वह पाकीज़गी में दुनिया-भर की औरतों में आला व अफजल नहीं है ?"

"क्या कहा जा सकता है, बन्दा परवर ! शास्त्र बतलाता है कि स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य देवता भी नहीं जानते, मनुष्य की तो बात ही क्या है ?"

"तो क्या तुमको किरणमयी के सती होने में भी कोई संदेह है ?"

"आजकल सती औरतें दुनिया में पैदा ही नहीं होतीं, खुदावन्द ! इसमें ज़रूर कुछ न कुछ राज़ छिपा हुआ निकलेगा। मुमकिन है कि हाथी के दाँत खाने के और, और दिखाने के और निकलें। अल्लाह ही जानता है—

जिसको ताबे-उम्र लगी हो न हवा,
ऐसा दुनियाँ में कोई शिजर ही नहीं।

ऐश इशरत का लाहक व ख़्वाहिश न हो
जिसे, ऐसा जहाँ में बसर ही नहीं॥

"तो क्या तुम्हारा यह ख्याल है, शेरशाह ! कि उसका सतीत्व महज़ दिखावा या ढोंग है ?"

"हाँ, खुदावन्द ! महज़ ख्याल ही नहीं, कामिल यकीन है।"

"सम्राट् ! यह मेरी पत्नी की ज़ात पर खुला आक्रमण है। मैं इसे कदापि सहन नहीं कर सकता।"

"जहाँपनाह ! मेरा यह दावा है कि आजकल के ज़माने में सती होना मुमकिन ही नहीं है। सिर्फ़ मक्कार औरतें अपने भोले मर्दों को महज़ छिनरघंघोटे दिखाने के लिये ही इस तरह के दिखावटी स्वाँग रचा करती हैं।"

"मैं अपनी पत्नी के विषय में पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ, कि वह सती है।"

"माफ़ कीजिये, महाराव साहब ! आपकी औरत की यह महज़ मक्कारी है, सत-वत कुछ नहीं है। इस तरह की मक्कार औरतें महा बदमाश हुआ करती हैं, जो अपने बुढ्ढ़े शौहरों को इसी तरह उल्लू बनाकर उँगलियों पर नचाया करती हैं।"

'नवाब रुहेला ! इस प्रकार हमारे अपमान का आपसे पूरा बदला लिया जायगा। आप अकारण ही एक हाड़ा राजपूत से भिड़ने चले हैं।"

"कोई बात नहीं। यह पठान भी नहीं डरता। पर यह यकीन कामिल है कि आजकल की औरतें सती नहीं हो सकतीं। यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इसमें उसकी ज़रूर कुछ मक्कारी होगी।"

"और मैं भी यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि मेरी पत्नी परम सती है।"

भरे दरबार में शाहजहाँ द्वारा छत्रसाल और किरणमयी के बारे में प्रशंसात्मक वार्तालाप सुनकर, आपे से बाहर हुए नवाब रुहेला शेरशाह का, बून्दी-नरेश छत्रसाल ने सरोष कड़ा विरोध किया, तो शाहजहाँ ने व्यवस्था भंजन का विचार करके, उनके वार्तालाप में हस्तक्षेप करना

ही उचित समझा और उन दोनों को चुप करके कहा :—

"महाराव छत्रसाल, व नवाब शेरशाह ! आप दोनों को इस दरबार में, इस तरह झगड़ने की जरूरत नहीं। जब तुम दोनों अपने-अपने दावे पर साबित-कदम हो तो क्यों न तुम्हारी शर्त कायम रहे, जिसको पूरा करना तुम दोनों में से हर फरीक का काम हो।"

"बन्दा शर्त के लिए हमेशा तैयार है, जहाँपनाह ?"

"तो मैं भी शर्त से नहीं घबराता सम्राट् !"

"जब आप दोनों शर्त को मँजूर करते हैं, तो यह भी बतलाइये कि अपनी-अपनी शर्त के लिए क्या-क्या कुरबानी देने को तैयार हैं, यानी दाव पर क्या-क्या लगाना चाहते हैं ?"

"मैं अपनी पत्नी की पवित्रता को सिद्ध करने के लिए अपना प्राण भी दे सकता हूँ।"

"मैं भी अपनी बात की सचाई को साबित करने के लिए अपनी जान को कुछ भी नहीं समझता, बन्दानवाज़ !"

"अच्छा शेरशाह, तुमको एक माह का मौका दिया जाता है कि तुम राजकुमारी किरण को असती साबित कर दो, तो महाराव छत्रसाल अपना सर शर्त के माफिक उतरवा देंगे और अगर तुम खुद नाकामयाब रहे तो तुम्हारा सर धड़ से अलग कर दिया जायगा। क्या यह शर्त तुम लोगों को मंजूर है ?"

"शेरशाह इस शर्त को ज़रूर मंजूर कर लेंगे, सम्राट् !"

उक्त शाहजहाँ, शेरशाह और छत्रसाल की शर्त-सम्बन्धी बातचीत में शामिल होकर आमेर-नरेश से कहा।

शेरशाह—हाँ, मुझे यह शर्त पूरी तरह मंजूर है ?

छत्रसाल—मुझे भी अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा की रक्षा में अपना प्राण देना स्वीकार है।

शाहजहाँ—बस तो एक माह तक महाराव छत्रसाल बूंदी न जाकर

यहीं हमारे नज़दीक रहेंगे और इस शर्त के दौरान में अपनी रानी के साथ न कोई ताल्लुक रख सकेंगे और न लिखा-पढ़ी कर सकेंगे। शेरशाह कल से ही शर्त पूरी करने के काम में मशगूल हो जायँगे और एक महीने के अन्दर-अन्दर अपनी शर्त पूरी करके लाएंगे। अगर ये शर्त पूरी करने में नाकामयाब रहे तो एक शरीफ औरत की बेइज्ज़ती करने के कुसूर में सूली के मुस्तहक होंगे।

'मंजूर हैं' कहकर शेरशाह सिर नवाकर दरबार से कार्य पूरा करने के विचार से उठकर चले गये। बूंदी-नरेश भी अपने निश्चित स्थान के लिए प्रस्तुत हो गये।

इसके पश्चात् शाहजहाँ, आमेर-नरेश और तहव्वर खाँ में परस्पर निम्न प्रकार से वार्तालाप होने लगा :—

आमेर-नरेश—धन्य सम्राट्! वास्तव में इस पारस्परिक द्वेष और साम्प्रदायिक विप्लव को मिटाने के वास्ते अत्यन्त सरल एवं सुन्दर विधान श्री सम्राट् ने प्रस्तुत कर दिया।

तहव्वर खाँ—दरहक़ीक़त बन्दा परवर! अगर जहाँपनाह ने इस नेक तदबीर से यह झगड़ा न मिटाया होता, तो आज सल्तनत में तूफान ही बर्पा हो जाता।

शाहजहाँ—यह मामला और भी दिलचस्प है। क्योंकि बहुत से लोग औरत की पाकीज़गी के कायल हैं, मगर बहुत से कहते हैं कि आजकल कलयुग में औरतों का पाक-अस्मत होना मुम्किन ही नहीं है। इस शर्त से अव्वल तो यह मसला हल हो जायगा कि औरत ज़ात कहाँ तक पाक है। दूसरे शेरशाह और छत्रसाल के आपसी अरमान भी निकल जायँगे। तीसरे यह झगड़ा जो कि फिरकेदाराना फिसाद में बदल जाना मुम्किन था, वह भी ठण्डा हो जायगा।

तहव्वर खाँ—वाह! वाह!! क्या आला दिमाग़ है, खुदावन्द का। इसी नियामत को हासिल करके तो हुज़ूर सारे जहाँ की सल्तनत कर

रहे हैं। तुर्रा यह कि इन्साफ़ करते हैं जो दूध का दूध और पानी का पानी हो जाय।

आमेर-नरेश—सम्राट् अकबर जैसे बुद्धिमान् नरपति के पौत्र श्री सम्राट् शाहजहाँ में इन गुणों का होना स्वाभाविक ही है मन्त्री ?

तहव्वर खां—क्योंकि शाहन्शाह अकबर के नायब और सलाहकार रहे, आमेर-नरेश मानसिंह साहब और खुदावन्द के सलाहकार हैं उनके फरजन्द महाराज जगतसिंह साहब, तब ऐसा क्यों न हो ?

इसके अनन्तर शाहजहाँ ने अपना दरबार समाप्त कर दिया और वे अन्दर चले गये। सरदारगण भी अपने-अपने डेरे की ओर रवाना हो गये।

अठारहवाँ परिच्छेद

सायंकाल का समय है और असौज का महीना है। वर्षा-ऋतु समाप्त होकर अपना स्थान शरद-ऋतु को देती जा रही है। मन्द-मन्द सर्दी पड़ने लग गई है। यह मास बूँदी नगर के लिए प्राय: बड़ी सजधज और दर्शनीय दृश्यों से परिपूर्ण प्रदर्शनों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ का दशहरा-महोत्सव बड़े ज़ोर-शोर से हुआ करता है और जनता उसे देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक रहा करती है। किन्तु अबकी बार यह दशहरा-उत्सव बूँदी नगर में नहीं होगा। कारण कि, सम्राट् द्वारा किसी विशेष कार्य पर नियुक्त हो जाने से अबकी बार जनता के हृदय-पुष्प बूँदीपति महाराव छत्रसाल जी अपने नगर में न आकर राजधानी में ही रहेंगे। जिस प्रकार विदेश गये पति की पत्नी शृंगारों से शून्य हुआ करती है, वही दशा आज बूँदी नगरी की हो रही है। वह सूनी-सूनी लग रही है। व्यापारियों के दिलों में भी कोई विशेष उत्साह नहीं है, किन्तु फिर भी नगरी की एक सराय में बड़ी चहल-पहल है। सराय के प्रबन्धक तथा संरक्षक आदि कर्मचारी बड़े प्रसन्न प्रतीत हो रहे हैं। कारण कि एक बहुत बड़े मालदार सौदागर ने आकर कई दिनों से इस सराय में डेरा जमाया है। कई कमरे अपने अधिकार में कर रखे हैं। नौकर-चाकरों के बड़े अमले के साथ वह यहाँ आकर ठहरा है। इसके अतिरिक्त जिस किसी बूँदी-नगर-निवासी को वह ज़रा मनचला और रंगीन तबियत का देखता है, उसे तत्काल अपने अमले में शामिल कर

लेता है और इन लोगों पर धन इस कदर इफ़रात और खुले दिल से व्यय कर रहा है, मानो उसकी नज़र में उसका कोई मूल्य ही न हो। गरीब बूंदी की जनता उस धनाढ्य सौदागर के चकाचौंध में डालने वाले चमत्कारों को देखकर कुछ उसकी तरफ खिचती तथा प्रभावित-सी होती जा रही है। सराय के प्रबन्धक और नौकरों को तो इसने इतना धन खिलाया है कि उनमें से कुछ का तो भाग्य ही पलट गया है। जो उपलब्धि स्वयं महाराव छत्रसाल जी की अनुकम्पा से भी कठिन बनती, वह इस दूर देश के सौदागर के कारण अत्यन्त सुलभ हो गई है। सराय वालों ने भी सौदागर की प्रत्येक सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर दिया है। सौदागर महाशय का डेरा एक झाड़-फ़ानूस से परम सुसज्जित हण्डों के तेज़ प्रकाश से जग-मगाते हुये कमरे में है। उसमें अन्य आवश्यक वस्तुओं के साथ-साथ कई आराम-कुर्सियाँ भी पड़ी हुई हैं। ये कुर्सियाँ एक बड़ी मेज़ के चारों तरफ सजा दी गई हैं। उनमें से एक मध्यवर्ती कुर्सी पर सौदागर महाशय विराजमान हैं। सामने की एक दूसरी कुर्सी पर उनका एक सहकारी या मुसाहिब बैठा हुआ है। इन दोनों में किसी गुप्त एवं रहस्यमय विषय पर वार्तालाप, विचार-विनिमय तथा तर्क-वितर्क हो रहा है। दोनों व्यक्ति सामने पड़ी हुई मेज़ पर कभी एक और कभी-कभी दोनों हाथ मारकर किसी गहन समस्या के सुलझाने का प्रयत्न करते जान पड़ते हैं।

पाठक ! अब तनिक इन लोगों के वार्तालाप के शब्दों पर भी ध्यान दीजिये :—

"हम लोगों को यहाँ झक मारते हुये बीस दिन गुज़र गये, मगर काम में अभी तक कामयाबी की कोई सूरत नज़र नहीं आ रही। हिन्दोस्तान की सबसे होशियार कुटनी नसीबनजान को बहुत बड़े महनताने पर लाकर काम में जुटाया गया है। मगर वह भी रोज सुबह जाकर शाम को वापस आ जाती है और मामला वहीं का वहीं लटका

रह जाता है। अगर मुझे पहले ऐसा मालूम होता तो मैं इस पचड़े में क्यों पड़ता।

"यह काम तो वाक़ई बहुत तगड़ा हाथ में लिया गया है, हुज़ूर ! क्योंकि सुनने में आया है कि वह औरत तो सिवाय अपने खाविंद के और किसी दूसरे शख्स का मुँह तक भी नहीं देखती है और न अपना मुँह किसी दूसरे मर्द को दिखाती ही है। मगर खुदा का इतना शुक्र है कि अपने साथ कुटनी नसीबन जान भी अपने फ़न की पूरी ही माहिर है। शाहज़ादे और शाहज़ादियों को तो वह कठपुतली की तरह हाथों पर नचाती है। कुछ न कुछ काम तो वह ज़रूर ही बनाकर रहेगी।"

"क्या किया जाय ? अगर जान बचाने का सवाल न होता, तो ऐसी लामिसाल पाकीज़ा औरत के ऊपर शर्त पूरा करने की कोशिश कभी नहीं करता। मगर दुनिया में जान से प्यारी भी तो कोई दूसरी चीज़ नहीं है। उसे बचाने के लिये तो नेको-बद सभी कुछ करना पड़ता है। जब तो मज़ाक़-मज़ाक में शर्त कर ली, अब उसके पूरा करने के वक्त जान के लाले पड़ रहे हैं।"

"मेरे खयाल से तो हुज़ूर, बिना किसी मकरो-फरेब को इस्तेमाल में लाये, जान बचना मुश्किल है।"

"नसीबन से ज्यादा मकर-फरेब हम लोग समझ ही कब सकते हैं ? वह बड़ी पुरकार कुटनी है। उसके बराबर चतुर और चालाक औरत और कहीं दूसरी है ही नहीं।"

"मगर महल में रानी के सामने पहुँच कर भी अभी उसने कोई काम नहीं किया है। अगर वह भी नाकामयाब रही, तो बस दाता ही बेली है।"

"इस मामले में दौलत पानी की तरह बहाई जा रही है। पर अभी तक कोई नतीजा निकलने की सूरत नहीं। इतनी दौलत से तो रियासतें तक खरीदी जा सकती हैं। लाखों की रक़म तो इस कुटनी पर ही उलट

पलट कर ग़ारत हो गई है।"

"अजी सरकार! दौलत की कौन चलाई; मामला जान-जोखम का है? हाथियों के सौदे भी कहीं टके की साई से हुआ करते हैं?"

इसी समय सामने पालकी में से उतर कर एक स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया। इस स्त्री की वेश-भूषा और पोशाक शाही बेगमों जैसी ज़र्क-बर्क और बहुमूल्य है। रेशमी साड़ियों पर गोटा-किनारी, तारकशी और विचित्र हस्तकला का काम हो रहा है। हीरा, पन्ना और रत्नों से जड़े हुये सुवर्णाभूषण धारण किये हुये है। गौर वर्ण, नखशिख सुन्दर, शरीर खूबसूरत, पुररौनक, रौबदार और पुर-जलाल है। नेत्र चंचलता से चलने वाले बड़े और सुन्दर एवं हँसते समय गोल-गोल गुलाबी गालों पर पड़ जाने वाले गड्ढे उसके रूप को और भी अधिक आकर्षक बना रहे हैं। आयु में वह लगभग पच्चीस-तीस वर्ष की होगी किन्तु चेहरे के सुडौल, भड़कीले और तेज-पूर्ण होने के कारण उसकी आयु बीस से अधिक नहीं जँचती। बड़ी नज़ाकत से फूँक-फूँक कर क़दम रखने वाली अल्लहड़ता को लिये हुये है, देखने में ऐसी लगती है मानो मुम्ताज़ बेगम का प्रतिरूप हो। उसकी पालकी पर जो कहार काम कर रहे हैं उनकी वर्दी और पोशाक भी बादशाह के शाही सैनिकों के समान है। पालकी को भी ज़रदोज़ी और तारकशी के काम से ज़र्क-बर्क और अत्यन्त दर्शनीय ढंग से सजाया हुआ है। उस पर बारीक-बारीक रंग-बिरंगे रेशमी पर्दे पड़े हैं। इन पर्दों की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, बारीकी के ख्याल से इनमें कमाल करके दिखाया हुआ है। कारण कि, इनमें होकर, पालकी में बैठी स्त्री के सुन्दर वस्त्राभरण तथा रत्नजटित बहुमूल्य आभूषण एवं उनसे सुसज्जित उसके कमनीय अवयव साफ दिखाई देकर दर्शकों के दिलों को उसके वैभव से दंग कर देते हैं। उस बेपरदगी के पर्दे को देखकर, देखने वालों के दिल में भाँति-भाँति के ख़याल पैदा होने लगते हैं।

पालकी में से सुन्दरी उतर कर सौदागर को आदाब करती तथा मुसकराट के फूल बखेरती हुई कमरे के अन्दर आ गई और एक खाली कुर्सी पर बैठ कर, सौदागर को भेद-भरी दृष्टि से देखने लगी। सौदागर भी उसकी मनमोहनी निगाहों का अध्ययन बड़ी शान्ति और गम्भीर मुद्रा से करने लगा। इसी समय सौदागर के मुसाहिब द्वारा छेड़-छाड़ किये जाने पर कमरे की खामोशी भँग हुई और निम्न प्रकार हँस-मुस्करा कर बातें होने लगीं जिससे कमरा गूँजने लगा।

"क्यों बड़ीबी, गरीबों की तरफ नज़रे इनायत तक भी न हुई ?"

"खामोश ! तुम जैसे छोटे ग़ुमाशतों के साथ बातचीत करना, बेगम राहतजान अपने लिये हतक इज़्ज़त का बायस समझती है।" वह स्त्री मुस्करा कर बोली।

"यह बेगम राहतजान क्या बीमारी है, नसीबन जान।"

"माबदोलत हैं बेगम राहतजान, शाहन्शाह आलम शाहजहाँ की दूसरी बेगम। ज़रा ढंग से बातें करना। खबरदार ! अदब कायदा होशियार !!"

"शाहजहाँ की दूसरी बेगम ! इसका क्या मतलब नसीबन ? और पहली बेगम कौन है ?"

"अमा, शाहजहाँ की पहली बेगम मुम्ताज़ महल है और दूसरी बेगम है, माबदौलत यानी राहतजान। अब भी नहीं समझे।"

"नसीबन ! मैं तेरी इन राज़भरी बातों को ज़रा भी नहीं समझा।"

"अमा मिठाई खिलाओ, मिठाई। अगली बात पीछे पूछना।"

"यहाँ मिठाई में भी क्या कुछ घाटा है, क्यों ! क्या कोई कामयाबी का रास्ता निकल आया ?"

"जो कुछ कामयाबी का नक्शा आज तैयार हुआ है, यही बस कुछ-कुछ कामयाबी का तरीका है। इससे आगे तो कामयाबी की गाड़ी बढ़ती ही नहीं है। इसको इस मामले की इब्तदा और इन्तहा यानी आखरी

ख्याल करना चाहिये । इस में आगे बढ़ने की गुंजाइश नजर ही नहीं आ रही है । इस नक्शे पर जितना काम मुझ से आज हुआ है उतना शायद जिन्दगी भर में कभी होगा भी नहीं । मुझ से क्या, इस बारे में किसी से भी आगे कुछ नहीं हो सकता । जनाबमन ! इतना ही गनीमत समझलें कि जान बचाने का आखिर यह छोटा-मोटा तरीका निकला तो सही ।"

"किसी से कभी नहीं होगा, गोया दुनिया की अक्ल की तुम्हीं ठेकेदार हो ।"

"हाँ जनाब, इसमें शक भी क्या है ? नसीबन नसीबे की बड़ी तेज़ है ।"

"छोड़ो इन बातों को, पहले यह बताओ कि तुम क्या कर आई हो ?"

"मैं एक तजवीज़ लेकर राजमहल में गई और वहां पर सभी काम उसके माफ़िक हो गया ।"

"वह तजवीज़ क्या है और उसमें कामयाबी की सूरत किस तरह नज़र आती है । इन सारी बातों को ज़रा साफ-साफ खोलकर कहो । किसी तरह जान तो बचे, अब तो यही चिन्ता है । रहा सवाल इनाम का, सो वह तो तुमको इतना मिल जायगा कि मालामाल हो जाओगी ।"

"मैं दस दासियाँ लेकर महल में गई और अपने आप को शाहजहाँ बादशाह की बेगम राहतजान मशहूर किया और साथ ही महाराव छत्रसाल को अपना धर्म-भतीजा तसव्वुर करके उनकी धर्म-बुआ होने का भी दावा किया । अपने उन एहसानात पर जो महाराव छत्रसाल पर बन्दी की जानिब से हुए पुरअसर तरीके से रोशनी डाली । जैसे कासिमखां की गिरफ्तारी पर शाहन्शाह को इतना गुस्सा आ गया, कि वे बून्दी की ईंट से ईंट बजाने को तैयार हो गये तो बन्दी ने ही उन्हें समझा-बुझाकर बून्दी के साथ सुलह करने पर जोर दिया । दूसरे जब आमेर-नरेश और शेरशाह किरण के झपटने की तजवीजें बांध रहे थे और आला हज़रत को भी अपनी तरफ तोड़ लेना चाहते थे तो, बन्दी ने ही

स्वयंवर की लड़ाई के नतीजे पर शादी कराने का मशवरा दिया। तीसरे जब छत्रसाल स्वयंवर की लड़ाई जीतकर एक फ़कीर की शक्ल में जाहिर हुये तो शाहन्शाह ने फौरन उन्हें कत्ल करा देना चाहा मगर बन्दी के जोर देने पर यह मामला रूपनगर की अदालत को सौंपा गया। इसके अलावा मुम्ताज जब महाराव पर तोहमत लगाकर उन्हें बादशाह की निगाह में गिराने लगी, तो बन्दी ने मुम्ताज को भी डराया-धमकाया और शाह को भी समझाया। मेरे इन्हीं एहसानों की वजह से छत्रसाल मुझे धर्म-बूआ बनाकर आदर करते हैं। यहां तक कि उन्होंने मुझे बून्दी आकर भतीज-बहू की दावत पाने का भी नौता दे रक्खा है।

इन सब बातों को सुनकर रानी पहले तो कुछ शक, शुबा और सोच में मुब्तला रही, मगर फिर मेरे रोब-दाब, मकर-फरेब के जाल में ऐसी फँसी कि मेरे हर हुक्म को मानकर बड़ी इज्जत के साथ खातिर-तवाज़ग्र से पेश आने लगी। मैंने उसके साथ मेल-जोल भी हद से ज़्यादा बढ़ा लिया है। बस अब पौबारह हैं।"

"शाबाश ! तो आखिर जान बचाने का तुमने तरीका निकाल ही लिया, क्यों ?"

"गुमराह न हों खां साहब ! वह किसी भी तरह से आपको अपना धर्म नहीं दे सकती। मैंने उसे अच्छी तरह टटोल कर देख लिया है। मतलब यह है कि मेरा हर एक वार उस पर खाली गया है। वह हर तरह से पाकीज़ा और पतिव्रता औरत है।"

"तो फिर जान किस तरह से बचेगी नसीबन ! और इनाम भी किस बात का चाहती हो, तुम ?"

"यही कि किसी छल-फरेब से उसके बदन के पोशीदा निशानात का पता लगाऊँगी और उसकी कोई खास चीज़ बतौर निशानी के लाऊंगी। वह तुम्हारे शर्त के फैसले के दौरान में एक सबूत बन

सकेगी। और उसकी वजह से बादशाह और महाराव साहब दोनों को तुम्हारी जीत का यकीन हो जायेगा। यही है बस, वह तजवीज़।"

"बहुत अच्छा, यही सही; भागते भूत का लंगोटा तो है। भात न खाया तो हांडी को ही धर बजाया।"

"मगर क्या दुनिया इतनी ख़र-दिमाग है कि इस तरह की झूठी बातों को ही सचाई का सबूत मान लेगी?"

"इससे भी ज्यादा, खासकर इन राजपूत रईसों में—"

"ख़र दिमागों की कमी नहीं गालिब, एक ढूँढो हज़ार मिलते हैं।"

"हां अगर······।"

"अमा छोड़ो भी इस अगर-मगर को। घबराये क्यों जाते हो? जरा मेरे हथकण्डे देखो तो सही; निशानी की चीज़ें और पोशीदा निशानात वह काफी से ज्यादा सबूत बनेंगे कि 'क्या' और 'क्यों' की गुंजाइश ही नहीं रह जायेगी। अदालत में कानून की ही खानापुरी होती है। इन कामों में कहीं मुहर नहीं लगा करतीं।"

"अच्छी बात है। कुछ न होने से तो कुछ होना ही अच्छा। खाली सार से लतखना बैल ही ठीक है।"

पाठक! अब आप इस प्रकार से वार्तालाप करने वाले व्यक्तियों से जरूर परिचित हो गये होंगे। ये लोग और कोई नहीं, सौदागर के वेश में स्वयं शेरशाह नवाब रुहेला हैं। साथ में उनके मुसाहिब फजलबेग और कुटनी नसीबन हैं, जो बून्दी में पहुंचकर अपनी शर्त पूरी करने के मन्सूबे गांठ रहे हैं, जैसा कि ऊपर की बात-चीत से प्रकट है।

उन्नीसवाँ परिच्छेद्

"महारानी जी, मैं आपका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करती हूँ। आपने जो हमारी खातिर-तवाज़ग्र की है, उसे कभी दिल से नहीं भुलाया जा सकता। अब मैं यहाँ से अजमेर-शरीफ के वास्ते कूच करना चाहती हूँ।"

"आप हमारे अतिथि हैं। बादशाह शाहजहाँ की प्रधान बेगम और साथ ही साथ अनेक एहसानों के बोझ से मेरे पति को दबा देने वाली उनकी धर्म-बूआ ! ऐसी दशा में आपकी जो भी सेवा-शुश्रूषा हमसे बन जाय, वही थोड़ी है। क्यों, ठीक है न बूआ जी ?"

"मैं तुम्हारे शौहर महाराव छत्रसाल को अपने नूरेनज़र मुरादबख्श से भी ज्यादा अज़ीज़ मानती हूँ और वे भी मेरी इतनी ही इज़्ज़त करते हैं। मेरे बराबर आदर की निगाह से तो शायद वह खुदावन्द को भी न देखते होंगे। ठीक स्वयंवर के बाद ही उन्होंने मेरी-तुम्हारी मुलाक़ात कराने का इकरार किया था। मगर किस्मत ने अब आप से आप ही उसे पूरा कर दिया, जो हमारा ग्वालियर से सीधा अजमेर जाने का इरादा हो गया। कुछ भी हो, मगर सच बात तो यह है कि जितनी मैंने तुम्हारी तारीफ सुनी थी, वाक़ई तुमको उससे हज़ार-हज़ार गुना ज्यादा खूबसूरत, शरीफ और नेकदिल पाया है।"

"हम नाचीज़ क्या हैं, बुआ जी ! यह आपकी उदारता और गुण-ग्राहकता है, जो आप हम लोगों को इतना मानती और हमारी प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा करती हैं।"

"नहीं, ये महज़ बनावटी बातें नहीं। बन्दी तुम्हारी मेहमान-नवाज़ी से हद से ज्यादा खुश है। मैंने शाहंशाह आलम से भी तुम्हारी तारीफ करने का फैसला कर लिया है। तुम्हारे शौहर बूँदी-महाराव छत्रसाल के सामने ही भरे दरबार में तुम्हारी इस बेहतरीन मेहमान-नवाज़ी के लिये शुक्रिया अदा किया जायगा। तुम्हारे खंजर वाले मामले से वहाँ पर सब लोग इतने पुर-असर हैं कि तुमको बड़ी इज्जत की नज़र से देखते और दिल ही दिल में तुम्हें ताज़ीम देते हैं। महाराव के लिये तो बादशाह ने बड़ी आलीशान खिलअत अता की है। मैं बादशाह पर यह ज़ोर दे रही हूँ कि किरण-मयी के लिये एक अलहदा जागीर अता की जावे। बादशाह सलामत ने मेरी फरमाइश कुछ-कुछ मंजूर भी करली है। बाकी तुम्हारे शौहर की तो मैं वहाँ पर हर बला से ढाल बनकर हिफ़ाज़त कर रही हूँ। उनकी तरफ से तो तुम बिलकुल बेफ़िक्र रहो। शाही तख्त के नीचे बहुत-सी साज़िशें हुआ करती हैं। मगर मेरे रहते, तुम्हारे दुश्मन तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

"बुआजी, आपके दर्शन से हम यहाँ कृतकृत्य हो गये हैं। जाने से पूर्व आपको भोजन तो यहाँ राजमहल में करके ही जाना होगा। मनाई न सुनी जायगी।"

"मगर खाना खाने से पेशतर नहाना चाहूंगी, महारानी! आज सफर की तैयारी की वजह से अभी तक नहाई भी नहीं हूँ। क्या आप नहा चुकीं, महारानी?"

"नहीं, मैंने भी अभी तक स्नान नहीं किया। आज वास्तव में कुछ देर हो गई। इधर मैं अभी स्नानागार में जाने ही वाली थी कि आप आ गईं।"

"चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। आज हम-तुम दोनों साथ-साथ स्नान करेंगी।"

"नहीं, आप पहले जाकर स्नान कर आयें, मैं आपके पश्चात् नहा लूँगी ।"

"मेरे पीछे क्यों ? साथ क्यों नहीं, महारानी ! क्या मैं कोई मर्द हूँ ? लो देख लो, यहाँ कोई मर्द तो है ही नहीं ।" इतना कहकर कपड़े खोलकर पूरे तौर से बरहना हो जाती है और महारानी को नीचे गर्दन किये देखकर, कपड़े सँभालती हुई फिर कहती है, "देख लिया, इतना तरद्दुद क्यों करती हो ? औरत से औरत को किस बात की शर्म और किस मकसद से परदा ? बेफिक्र होकर आओ, साथ-साथ स्नान करेंगे ।"

यह बात-चीत बूँदी-राजमहल में महारानी किरणमयी और महाराव की तथाकथित धर्म-बुआ तथा शाहजहाँ की द्वितीय बेगम राहतजान के मध्य में हो रही हैं । महारानी किरणमयी दुविधाजनक स्थिति में अन्यमनस्क भाव से बेगम के साथ स्नानागार में जाने को तैयार होती है । स्नानागार में दोनों के साथ-साथ प्रवेश कर चुकने पर बेगम राहतजान फिर शीघ्रता से अपने कपड़े उतारकर पूर्ण नग्न हो जाती हैं और फिर हँसती हुई महारानी की साड़ी खींचकर उसे भी नग्न करने का यत्न करने लगती है । रानी साड़ी को कड़ी पकड़ कर, फिर इस प्रकार से आक्षेप कर रही है—

"नहीं, बुआ जी ! मैं इस प्रकार पूर्ण नग्न होकर स्नान नहीं किया करती ।"

"इसमें कोई हर्ज थोड़े ही है बेटी ! माता की गोद में बैठकर कभी नहाने में बेटी को क्या शर्म, मेरी लाडली ! मेरी तो यह दिली ख्वाहिश है कि आज मैं अपनी चिड़िया को अपने हाथों से नहलाऊँ । तुमको देखकर मेरी गुड्डी ! आज मुझे अपनी मरहूम बेटी हुस्नबानू की याद आ रही है । (आँखों से आँसू बहाते हुए) तुम्हारी-सी ही सूरत-शक्ल थी उसकी । अगर कहीं आज वह ज़िन्दा होती तो ठीक तुम जैसी ही होती । महारानी ! वह लौंडियों की लड़कियों के साथ महल के ऊपर

गुड़ियों से जा खेलती। मैं उसे ढूंढ़ती तो वह छिप जाती। मैं उसे खेलते देखकर फटकारती तो वह चुंदरी से मुंह ढंककर रोने लगती और कहने लगती कि, 'जब मैं मर जाऊँगी अम्मी जान! तब मुझे याद किया करोगी। मेरी कब्र पर बैठकर फूल चढ़ाते हुए रोया करोगी। आज तो मुझे फटकारती हो, ललकारती हो।' हाय! मेरी बेटी बड़ी अच्छी थी। वह रूठ जाती तो मैं उसे मनाया करती थी। लौंडी-बाँदियों के होते हुए भी उसे मैं अपने हाथों ही से नहलाया-खिलाया करती थी। आज तुम्हें देखकर मेरा वही मातापन जाग उठा है, मगर तुमने अर्ज़ कबूल ही नहीं की। ख़ैर, तुम पर कुछ ज़ोर थोड़े ही है...अगर मान लेती तो...।"

इतना कहकर वह फिर सुबक-सुबक कर रोने लगी और इस प्रकार उदास होकर बैठ गई, मानो काठ मार गया हो। उसके इस सफल अभिनय को देखकर सीधी-सादी क्षत्रिया महारानी का भी जी भर आया और वह दयार्द्र होकर कहने लगी—

'बुआ जी! आप रंज न करें, मैं आपको नाराज़ या दुखी करना नहीं चाहती। मैं तो तुम्हारे साथ नंगी नहाने से इसलिए झिझकती थी कि मुझे इसका अभ्यास नहीं है।"

"नाराज़ किस बात पर होऊँगी बेटी! पराई औलाद पर किसी का कोई ज़ोर थोड़े ही हुआ करता है। मैं यहाँ कैसे-कैसे जी में अरमान लेकर आई थी, कि अपनी मरहूम बेटी की जगह तुमको मानकर, तुम्हीं से उसकी जुदाई की हुड़क मिटाऊँगी, लेकिन तुमने मेरे टूटे दिल के और भी टुकड़े कर डाले। खैर जी, जैसी तुम्हारी मर्जी ?"

"बुआ जी! अब दिल को अधिक हल्का न करो। मैं अपनी धर्म-माता के साथ नंगी स्नान करूँगी।"

इतना कहकर उसने अपने सब कपड़े उतारकर एक तरफ रख दिये और पूर्ण रूप से नग्न होकर स्नानार्थ प्रस्तुत हुई। अब निश्चित भाव

से दोनों पूरी तरह से बरहना होकर तथा एक-दूसरे के सामने बैठकर स्नान-कार्य में संलग्न हुईं।

राहतजान स्नान करते समय खेल-खेलकर अपने टूटे दिल के बहलाने का अभिनय कर रही है। अतः स्नान बड़ा रोचक हो गया है। महारानी ने तो इन खेलों में देर तक निमग्न रहने को सामान्य मनोरंजन या धर्मबुआ का मन-बहलाव समझा है, किन्तु कुटनी इस अभिप्राय से स्नान-कार्य में देर तक संलग्न रही है कि रानी के गुप्त अंग के कुछ प्रमुख चिह्न समझकर उन्हें पूरी तरह से अपने ध्यान में बिठा ले।

महारानी की दाईं जाँघ पर लहसन का चिह्न है और बाईं पर एक बड़ा तिल। लहसन के निकट नीचे की तरफ एक फोड़ा-फुन्सी के घाव का गोल निशान भी है। बाईं भुजा पर ऊपर महाराज का नाम और नीचे महारानी का नाम गुदा हुआ है। इन गुप्त चिह्नों को देखकर कुटनी अत्यन्त प्रसन्न हो गई। इसके पश्चात् बड़े हर्ष के साथ सहभोज में सम्मिलित हुई। उसके इस समस्त कौटिल्य को महारानी ने केवल मातृ-वात्सल्य ही समझा और उसे प्रसन्न करने के अवसर दिये।

अब विदा का समय निकट आया। रानी ने बड़े सरल एवं संकुचित भाव से प्रार्थना की कि जाते समय वह कोई मनचीती वस्तु भेंट या उपहार के रूप में उससे प्राप्त कर ले। राहतजान पहले तो मना करती रही, किन्तु रानी का अत्यन्त आग्रह देखकर और उससे वचन लेकर महाराव की अँगूठी और कटार भेंट रूप में माँग लीं।

उक्त दोनों वस्तुएँ सुहाग-चिह्न के रूप में रानी को शादी के अवसर पर महाराव द्वारा प्रदान की गई थीं और स्वयं उन्हीं की अवगति में, वे वस्तुएँ रानी द्वारा महाराव के सदृश ही श्रद्धा, सम्मान और प्रेममय बन, पूज्य दृष्टि से देखी जाने लगी थीं। महाराव की अनुपस्थिति में उन्हें, उन्हीं के बराबर समझ हृदय से लगाकर रखा जाने लगा था।

इस माँग पर रानी बड़े पशोपेश में पड़ गई कि आखिर वह करे तो

क्या करे। देना भी बुरा और न देना तो उससे भी अधिक बुरा। साँप-छछूँदर के समान दुविधाजनक स्थिति बन गई। देने पर प्राणनाथ की स्मृति के सुहाग-चिह्नों का वियोग, विसर्जन और उनके प्रेम की लघुता; तथा न देने की दशा में वचन-भञ्जन, अतिथि की अवज्ञा और मातृवत् महाराव की धर्मबुआ एवं भारत-सम्राट् की पत्नी अर्थात् सम्राज्ञी का अपमान, साथ ही स्वामी की अप्रसन्नता पर घोर अनिष्ट की सम्भावना। वह इस दुविधाजनक स्थिति को देखकर बहुत विकल हुई। उसे स्वप्न में भी यह अनुमान न हुआ कि वह उन वस्तुओं को माँगेगी, जो उसके किसी लाभ की न होने पर भी रानी के लिये प्राण से भी अधिक प्रिय हों। रानी ने उसकी अभिरुचि बदलने की अनेक प्रकार से चेष्टा की, जिससे वह इन सामान्य वस्तुओं के स्थान पर और कोई बहुमूल्य वस्तु ले ले, किन्तु वह न मानी और अपनी हठ पर अटल रही तथा रानी को झूठा बनाकर अप्रसन्नता के साथ वचन तोड़ने का ताना देने लगी। अन्त में वचन देने के कारण रानी को वे वस्तुएँ दे ही देनी पड़ीं।

कार्यसाधन योग्य गुप्त-चिह्न और वांछित वस्तुओं को लेकर वह कुटनी सहर्ष महल से विदा हुई और सराय में आकर शेरशाह के गिरोह में सम्मिलित हो गई। अगले दिन बूँदी की सराय को सौदागर खाली करके चल दिया।

बीसवाँ परिच्छेद

"आदाब अर्ज़ बन्दापरवर !"

"कौन ? शेरशाह रुहेले ! आप तशरीफ ले आये ? क्या आपका काम अञ्जाम हो गया ?"

"हुज़ूर की मेहरबानी से बड़ी खूबसूरती के साथ। खादिम जिस काम के लिये तैनात किया गया था उसे पूरी कामयाबी के साथ करके लाया है। शेरशाह जिसे शुरू करता है उसे पूरा करके छोड़ता है।"

शाहजहाँ शेरशाह की बातें सुनकर हैरत में आ गये। उन्हें कभी यह अनुमान तक नहीं हुआ था कि ऐसी पाक और पतिव्रता स्त्री पर उसकी इज्ज़त के लेने में शेरशाह इतना शीघ्र सफल-मनोरथ हो जायगा। अतः उसके कथन की पुष्टि करने के लिये वे पूछने लगे :—

"क्या तुम इस बात का कोई ठोस सबूत दे सकते हो कि किरण सती या पतिव्रता नहीं है ?"

"जी हाँ हुज़ूर ! ज़रूर !! सती या पतिव्रता होना तो दूर रहा, वह तो आम औरतों से भी कहीं ज्यादा गिरी हुई है। मेरी ज़रा-सी कोशिश से ही वह मेरे काबू में आ गई और बड़ी मुहब्बत के साथ मेरे मन मुताबिक बर्त्ताव करने लगी, खुदावन्द ?"

"इस अमर के जो-जो तुम्हारे पास पुख़्ता सबूत हों उनको हमारे हुज़ूर में पेश करो।"

"यह हैं महाराव छत्रसाल जी की 'अंगूठी' और 'कटार'।

इस पर शाहजहाँ उन दोनों वस्तुओं को लेकर देखते हैं। पलटने पर महाराव छत्रसाल का नाम उन पर खुदा हुआ नज़र पड़ता है। दरबार में निकट ही बैठे हुये महाराव छत्रसाल को अपने समीप बुलाकर उन्हें वे दोनों वस्तुयें पहचानने के विचार से दिखाते हैं। महाराव छत्रसाल देख और पहचानकर घबराहट में पड़ जाते हैं।

शेरशाह—क्यों महाराव पहचानकर बताइये, वे दोनों चीज़ें शादी के मौके पर महासती किरणमयी को, निशानी या सुहाग-चिह्न की शक्ल में, जनाब ही ने तो दी थीं न ?

छत्रसाल—हाँ ये दोनों वस्तुयें मेरी ही हैं, सम्राट् ! मैंने इन्हें शादी के अवसर पर अपनी पत्नी को प्रदान किया था। ये तब से उसी के पास रहती रही हैं।

शेरशाह—महारानी की बाईं भुजा पर, ऊपर महाराज का और नीचे सती रानी जी का नाम गुदा हुआ है। क्यों, है न महाराव छत्रसाल साहब ?

महाराव छत्रसाल यह सुनते ही सन्न होकर तथा सिर नीचा करके पृथ्वी की ओर देखने लगते हैं, बोलते-चालते कुछ नहीं और न ऊपर को मुँह ही उठाते हैं।

शाहजहाँ—क्या, शेरशाह ठीक फरमा रहे हैं, महाराव ?

छत्रसाल—हाँ, ठीक है, सम्राट् !

शेरशाह—और जिस महासती का पोशीदा अंग महाराव के अलावा और किसी को देखने के लिये नसीब ही न हुआ हो और न हो सकता है, ज़रा उसका भी हाल सुनियेगा, सरकार !

शाहजहाँ—हाँ ज़रूर ! उसी पर तो मामले का फ़ैसला है।

शेरशाह—महारानी की दाहिनी जाँघ पर लहसन का निशान है और उसी के पास नीचे की तरफ किसी छोटे घाव का गोल निशान भी है।

शायद कोई फोड़ा हुआ होगा। क्यों महाराव साहब ? और बाईं जाँघ पर एक काला तिल भी है।

छत्रसाल—(अत्यन्त लज्जित होकर) हाँ, जो नवाब साहब कह रहे हैं वह सब ठीक है, सम्राट् !

नृपस्य चित्तं, कृपणस्य वित्तं, दुर्जन जनानां च मनोरथानाम्।
स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।।

इस स्त्री के रोग ने मुझे जीवित ही मार डाला। सम्राट् ! अब शीघ्रातिशीघ्र मेरा सिर उतरवाइये।

शाहजहाँ—आप शर्त हार गये हैं, महाराव ! ऐसी हालत में फैसले के माफिक आपको शीश तो देना ही पड़ेगा। इसका तो कहना ही क्या है ? मगर सियासी बातों पर गौर करके, इतनी रियायत हम आपको ज़रूर देते हैं कि आप आज से ठीक एक महीना बाद अपना शीश उतरवाकर शर्त को पूरा करें। पेशतर इसके आप बूँदी जाकर अपनी रियासत का मुकम्मिल इन्तज़ाम कर आयें, क्योंकि उसकी जिम्मेदारी आपके सर पर लाज़मी तौर से है।

महाराव छत्रसाल ने शाहजहाँ को धन्यवाद दिया और दरबार से विदा लेकर अपने डेरे पर आ गये। किन्तु अपनी स्त्री की दुश्चरित्रता देखकर उनका मन लज्जा और ग्लानि से इतना खिन्न हुआ कि उन्हें किसी से मिलना या मुँह दिखाना भी उचित प्रतीत नहीं हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने बूँदी को प्रस्थान कर दिया, यद्यपि उनके पैर उस तरफ को पड़ते ही नहीं थे। कुछ दिन की यात्रा के पश्चात् वे बूँदी पहुँच गये। राजमहल में न जाकर तथा रानी को अपने आने की खबर तक न देकर नगर से बाहर राज-वाटिका में ही उन्होंने डेरा लगा दिया। महाराव सदा बाहर से आकर राजमहल में पधारते रहे हैं, किन्तु अब की बार नगर से दूर ही रुके हुये हैं। वहीं पर अपने सरदार और राजकर्मचारियों को मिलने-जुलने के लिये बुलाते हैं। रनवास में आना तो

दूर रहा, अपने आने की उन्होंने रानी को सूचना तक नहीं भेजी है। जब रानी को यह समाचार विदित हुआ तो उसे विशेष चिन्ता होने लगी कि ऐसा क्या कारण है जो महाराव बूंदी आकर भी बाग में ठहरे हैं। वे न तो राजभवन में पधारे और न अपने यहाँ आने की सूचना ही दी। यह सोचकर और किसी अनिष्ट की आशंका करके उसने पालकी मंगाई और उसमें बैठकर वह स्वयं महाराव के दर्शनार्थ वाटिका में पहुँची तो महाराव ने वहाँ भी उससे मिलना स्वीकार नहीं किया और वापस राजमहल में लौट जाने की आज्ञा दी। वह बेचारी हताश होकर वापस महल में आ गई।

महाराव छत्रसाल ने अपने राज्य की उचित व्यवस्था की और अपने सरदार और कर्मचारियों को तत्सम्बन्धी उचित आदेश भी दे दिये। इसके पश्चात् सब से अन्तिम भेंट करके, राजधानी के लिये प्रस्थान कर दिया। उस प्राणप्रिय पत्नी से, जिससे बिना मिले एक क्षण भी उनको कल्प के समान प्रतीत होता था, आज उसकी सूरत को देखना भी अच्छा न लगा। रानी को महाराव के आगमन और राज्य-सम्बन्धी कार्यों का विवरण प्राप्त हुआ। इसके साथ ही साथ यह समाचार भी मिला कि उन्होंने बूंदी से अन्तिम विदा प्राप्त करली है तो उसका कलेजा धक् से रह गया। उसको विश्वास हो गया कि बुआ जी का आना अवश्य किसी रहस्य से युक्त है, जिसके कारण सम्भवतः बूंदी के राजवंश का सम्मान संकट में है। ऐसा विचार कर रानी ने अपनी अभिन्न-हृदया दो-एक सखी-सहेलियों को बुलाकर इस विषय पर मंत्रणा की। उस मंत्रणा-गृह का निर्णय यही रहा कि महारानी को कुछ विश्वस्त स्त्री-पुरुषों के साथ दिल्ली जाना चाहिये और वस्तुस्थिति का पता लगाकर उसके उपचार का प्रबन्ध करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातः ही निश्चित योजनानुसार महारानी की विशेष टोली ने दिल्ली की ओर कूच कर दिया। मंज़िल पर मंज़िल तै करके

यह टोली बड़ी शीघ्रता के साथ राजधानी में पहुँच गई और एक सुविधा-जनक सराय में उतरकर वहीं अपना डेरा लगा दिया।

रानी की टोली का नेतृत्व हमारी पूर्व परिचिता चमेली कर रही है, जो जासूसी के कार्य में बड़ी चतुर है। अतः उसी को रहस्योद्घाटन का कार्य सौंपा गया है। इसने नगर में घूमकर उस समाचार को सुना, जो सर्वसाधारण की चर्चा का विषय बना हुआ था कि हाड़ा राजा ने अपनी पत्नी के सतीत्व के विषय में शेरशाह से शर्त बदी थी। शर्त के अनुसार जो व्यक्ति पराजित होगा वही शीश देगा। चूंकि शेरशाह रानी को भ्रष्ट करके शर्त जीत गये हैं अतः अगले सप्ताह में महाराव का सिर धड़ से पृथक् कर दिया जायगा। शेरशाह ने रानी से महाराव के अँगूठी और कटार निशानी के रूप में ले लिये और उसके गुप्त अंगों को देख लिया, जो उसके विजय के प्रमाण बन गये।

इस प्रकार पूर्ण पुष्टि के साथ चमेली के द्वारा यह सम्वाद ले आने पर रानी को उसे सुनकर अत्यन्त खेद हुआ और वह उस बनावटी बुआ कुटनी के छल-कपट से तत्काल परिचित हो गई। उस दृश्य का सारा चित्र उसके नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष रूप से आ उपस्थित हुआ, जबकि उसके द्वारा वह अपने ही महल में छली गई थी। यह भी मालूम करा लिया कि वह कुटनी नसीबन लखनऊ की एक प्रसिद्ध वेश्या थी। वह केवल इसी काम के लिए बुलाई गई थी। वह अपना कार्य समाप्त करके तथा इनाम लेकर अपने स्थान को वापिस चली गई।

अब रानी ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब अवस्थाओं को विचार कर यह अनुभव किया, कि यह समय दुख या पश्चात्ताप करने का नहीं। इस समय महा कठिन एवं 'प्रबल-परीक्षा' की घड़ी सम्मुख है और इस प्रबल-परीक्षा के अन्तर्गत उसे अपने प्रिय पति के प्राणों की रक्षा और अपनी शुद्धता प्रमाणित करनी होगी। एक बार छली जाने पर उसे यह अनुभव हो गया कि संसार में पूर्ण सतर्क रहने की आवश्यकता है।

परिस्थिति का गम्भीर अध्ययन कर महारानी अब भावी कार्य-क्रम पर विचार कर इस निश्चय पर पहुँची कि कार्य-सिद्धि के हेतु कोई योजना बनाई जाये। वह योजना अच्छी और अकाट्य हो और बड़ी दक्षता से कार्यान्वित की जानी चाहिये। अन्त में चमेली की सहायता से बड़े विचार-विनिमय के पश्चात् एक ऐसी सामयिक योजना सोच निकाली गई, जिसके द्वारा विजयी शेरशाह का पराभव सम्भाव्य समझा गया।

चूंकि दूसरे दिन प्रातःकाल से उस योजना को कार्यरूप दिया जायगा, अतः तुरन्त ही तत्सम्बन्धी सब सामग्री एकत्रित करने का प्रबन्ध किया गया। यह सब कार्य ऐसे गुप्त रूप से सम्पन्न होने लगा कि उसके सम्बन्ध में किसी बात की किसी को कानों-कान भी खबर न हो पाई। जिसे जो कार्य सौंपा गया, वह उसे करने लगा और अन्त तक पहुँचा दिया। अस्तु, संध्या पर्यन्त उस दिन योजना-सम्बन्धी समस्त सामग्री एकत्रित की गई और प्रत्येक आवश्यक एवं प्रयोजनीय वस्तु को जाँच करके देख लिया गया कि वह हर प्रकार से अवसर के उपयुक्त भी है या नहीं। एक ठोस योजना का आधार पाकर रानी की समस्त चिन्ताएँ दूर हो गईं।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

दिल्ली में बादशाह शाहजहाँ ने एक विशेष दरबार का आयोजन किया है। हाट, बाट, बाजार तथा किले-कल्लर सब विशेष रूप से सज रहे हैं। लोग प्रसन्न बदन से सुन्दर सोफ़ियाना लिबास धारण किये हुए, प्रत्येक जन-स्थल पर घूम रहे हैं। इस सारी प्रसन्नता का क्या कारण है ? आज शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र एवं साम्राज्य-भर के युवराज शाहजादा दाराशिकोह की सालगिरह का दिन है। उत्सव तथा हर्ष प्रकट करने का इसी दरबार में व्यवस्था की जायगी और फिर दोपहर के पश्चात् दूसरी बैठक में श्री युवराज को उपहार भेंट किये जायेंगे। दरबार की पूर्व निश्चित दस बजे की वेला काफ़ी देर पहले व्यतीत हो चुकी है, किन्तु अभी तक बहुत थोड़े सरदार एवं राज्य-कर्मचारीगण एकत्रित हो पाये हैं। स्वयं बादशाह शाहजहाँ बड़ी देर से दरबार में आकर अपने तख़्त पर विराजमान हो गये हैं, किन्तु सरदारों के स्थान को रिक्त और दरबार को सूना देखकर, उनके हृदय में क्रोध और चिन्ता दोनों से युक्त भावना सम मात्रा में बढ़ती जा रही है। दरबार का ऐसा फीकापन उन्होंने अपने राजसी जीवन में अब तक कभी नहीं देखा है। अन्त में बठे-बैठे उकताकर, मंत्री तहव्वर खाँ को निकट बुलाकर इस भांति पूछताछ करने लगे—

"आज अभी तक दरबारी-जन दरबार में हाजिर क्यों नहीं हुये, तहव्वर खाँ ?"

"बन्दा-परवर, आज एक बड़ी पुरहुनर नटनी पूर्व की जानिब से आई है। उसका नाच-गान गोया परिस्तान की किसी हूर का नाच-गान है। जिसने उस परी को देखा या उसका नाच-गान सुना है, वह उस पर ऐसा फ़रेफ़ता और पागल होगया है कि उसी गायक-टोली के पीछे लगा हुआ फिर रहा है। यहाँ तक कि उसको यह भी ध्यान नहीं है कि उसे मुजरे के लिये दरबार में भी हाज़िर होना है। नटनी के रूप-यौवन नें व उसके जादू के ज़ेर-असर होकर, लोग इस बात को गोया भूल ही से गये हैं, कि फ़र्ज के अदा न होने की हालत में सरकार की तरफ से कड़ी से कड़ी सज़ा भी मिल सकती है। दरबार के सरदार या सरकारी मुलाज़मान ही क्या, खुदावन्द! सारा का सारा दिल्ली शहर ही अपने होशो-हवास खो बैठा है। दुकानदार अपनी दुकानों को बन्द करके उसी नटनी के साथ हो लिये हैं।"

"ऐसी अजीबो-ग़रीब नटनी का नाम तो हमने आज तक कभी नहीं सुना, जो अपने नाच-गान या रूप-यौवन के हुनर से ऐसा जादू कर सकती हो, जिसके ज़ेर-असर सरकारी मुलाज़मान अपने फ़र्ज की अदायगी तक को भूल जायँ।"

"सरकार! हाथ कंगन को आरसी क्या है? मैं कोई झूठ थोड़े ही बोल रहा हूँ?"

"अगर यह बात है तो उस नटनी को मय साज़ो-सामान के हमारे दरबार में फ़ौरन मुजरे के लिये हाज़िर होने के वास्ते ज़रूरी हुक्म शाया कर दो। हम भी तो देखें वह कैसी पुरनूर व हुनरमन्द नटनी है!"

यह सुनकर मंत्री तहव्वर खाँ ने शाहंशाह की आज्ञा का तत्काल पालन किया और सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियों को शाही आज्ञा-पत्र के साथ नटनी को तत्काल दरबार में बुला भेजा। थोड़ी ही देर में नटनी अपने साज-सामान और स्त्री-पुरुष पात्रों के साथ शाही आज्ञानुसार दरबार में मुजरे के लिये आ उपस्थित हुई। सम्राट् ने नर्तकी-टोली का

निरीक्षण करके, नटनी को अपने सम्मुख अपनी संगीत-कला के प्रदर्शन का आदेश दिया। सम्राट् की आज्ञा का नटनी ने शीघ्र पालन किया। सरदारगण उत्सुकता से नटनी के रूप को देखने लगे। नटनी में निःसन्देह कुछ दैवी-चमत्कार जनता को दृष्टिगोचर हो रहा है।

दरबार में नटनी का नाच-गान आरम्भ हो गया है। उसके मोहक प्रभाव में राजा-प्रजा सभी उपस्थित वर्ग आत्म-विस्मरण करते जा रहे हैं। वास्तव में ऐसी सुन्दर, सुरूपमान एवं आकर्षक नटनियां देखने का शाहन्शाह शाहजहाँ तक को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। स्वयं शाहन्शाह यह निश्चय करने में संकुचित प्रतीत होते हैं कि ये नटनियां साँसारिक विभूतियाँ हैं या स्वर्गीय अप्सराएं। वयोवृद्ध शाहजहाँ तक के हृदय की भी इस समय विचित्र दशा हो गई है। वे एक नशे की सी अवस्था में कभी दत्तचित होकर नटनी का मनमोहक रूप ही देखते रह जाते हैं तो कभी सुमधुर संगीत सुनने में ही इतने तल्लीन हो जाते हैं कि अन्य किसी बात का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। कभी वे होश में होते हैं तो कभी बिल्कुल की सुधबुध भूल जाते हैं। प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति के मुँह से अनायास ही 'वाह' 'वाह', 'धन्य' 'धन्य', 'वल्ला-वल्ला', 'सुभानअल्ला' आदि शाबाशी तथा प्रशंसा-सूचक शब्द निकल पड़ते हैं। आज्ञानुसार निश्चित समय तक संगीत होने के पश्चात् विराम की वेला भी आ गई जबकि वह मनोरंजन समाप्त हो गया। यद्यपि दर्शक-वर्ग संगीत की समाप्ति से प्रसन्न नहीं, किन्तु फिर भी दरबार की समाप्ति का समय हो जाने एवं संगीत-मण्डली के स्वकला-प्रदर्शन करते-करते थक जाने के कारण सम्राट् को भी प्रदर्शन समाप्ति की आज्ञा देनी पड़ी। शाहजादे, शाहजादियाँ व बेगमें तक सभी की यह सिफारिश हुई कि सम्राट् को इन कलाकारों के लिए मन-वाँछित पुरस्कार देना चाहिए। सम्राट् शाहजहाँ स्वयं उनसे अत्यन्त प्रभावित हो गये और उनकी कला की हार्दिक प्रशंसा करते हुए तथा

उनके अलौकिक होने का निर्णय देते हुये मनोवांछित पुरस्कार माँगने का अनुरोध करने लगे। नटनी ने मनोवांछित पुरस्कार माँगने से पूर्व बादशाह से वचन देने की प्रार्थना की, जिससे पूर्व कुछ भी स्वीकार न करने का अपना निश्चय प्रकट कर दिया। शाहजहाँ ने अपने प्राण, शाही सम्मान, ताज और तख्त के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु के देने का वचन दे दिया। इस पर नटनी ने निवेदन किया कि हमारे प्रतिवादी शेरशाह नवाब रुहेला एक घोर अपराध के अपराधी हैं अतः उनके विरुद्ध हम निष्पक्ष न्याय चाहते हैं। इस पर नटनी और सम्राट् में निम्न प्रकार से वार्तालाप हुआ—

"तुम्हें बिला तास्सुब सच्चा इन्साफ मिलेगा, मगर उसके पेशतर सही-सही यह बतलाना होगा कि, सरदार शेरशाह से तुम्हारा क्या ताल्लुक है और उसने तुम्हारा क्या क़सूर किया है।"

"मेरी कहानी यह है कि मैं बनारस की निवासिनी एक प्रसिद्ध नर्तकी हूँ, सम्राट्! शेरशाह ने मेरे साथ निकाह करने तथा अपनी प्रधान बेगम बनाने का धोखा देकर और झूठे वायदे करके प्रथम तो मेरा ईमान बिगाड़ दिया और फिर मेरा लाखों का धन-जेवर लेकर मुझे धनहीनता की दशा में भूखी मरने के लिए छोड़कर छिपे-छिपे चोरी से इधर चले आये। इस तरह इनके द्वारा मेरा लाखों का धन-जेवर भी धोखे से हड़प लिया गया और मेरा धर्म, ईमान भी छीन लिया गया। उसी समय से मैं इनकी खोज में फिर रही हूँ और ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पागल हो गई हूं। दवयोग से ये आज यहाँ पर मेरे हाथ आये हैं। यह है इनका अपराध। प्रस्तुत न्याय-विधान के अनुसार इन्हें प्राण-दण्ड मिलना चाहिये।"

नटनी के इस वक्तव्य पर शाहजहाँ को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने निम्न तर्क किया—

"तुम्हारी बात का कैसे यकीन किया जाय? शेरशाह की तरफ से

हमें ऐसी उम्मीद कभी नहीं है। क्या कोई काबिले इत्मीनान सबूत तुम्हारे पास है ?"

"स्वयं नवाब रुहेला मेरे प्रमाण होंगे सम्राट् ! स्मरण रहे सम्राट् ने निष्पक्ष न्याय का वचन दिया है। शेरशाह मेरी लाखों की सम्पत्ति और धर्म-ईमान को लूट लाये हैं। एक स्त्री से ऐसे गम्भीर विषय पर उसके पूर्ण सत्य कथन के उपरान्त सम्राट् और क्या प्रबल प्रमाण चाहते हैं।"

"क्यों नवाब शेरशाह ! सुन रहे हो कि यह नटनी आपको अपना मुल्ज़िम करार दे रही है।"

"खादिम सुन रहा है, बन्दानवाज़ ! मगर कलाम पाक की कस्म खाकर खादिम दावे के साथ कह सकता है कि आज इस जगह को छोड़कर इससे पहले कभी इस नटनी की हुज़ूर के इस खाकसार ने शक्ल तक भी नहीं देखी है और कोई दूसरी बात तो दूर रही। यह नटनी शाहन्शाह के इस खादिम को झूठी तौहमत लगाकर फंसाना चाहती है।"

"नहीं सम्राट् ! न्याय किया जाय। मेरा वचन अक्षरशः सत्य है। बिना किये कोई भी सुशील स्त्री किसी पुरुष को सरेदरबार धर्म-ईमान लेने की झूठी तौहमत नहीं लगा सकती और चाहे कुछ कह ले या कर ले।"

"नहीं सरकार ! यह एक इज्ज़तदार सरदार की तौहीन करने के लिये ही कोई झूठा जाल बनाया गया है।"

"क्या भारत-सम्राट् वचन-बद्ध होकर भी केवल पक्षपातवश न्याय का गला घोंट देंगे ? वह भी केवल इसलिए कि बन्दी एक गरीब स्त्री और प्रतिद्वन्द्वी एक अमीर पुरुष है। क्या पुरुष स्त्रीत्व का और अमीर गरीबी का खून चूसने के लिये ही बनाये हैं, भगवान् ने ?"

"कभी नहीं ! कभी नहीं ! मगर तुम्हारे दावे की सच्चाई का तो

आखिर कोई सबूत होना ही चाहिये।"

"सरकार ! मैं श्रीमान् के पूरे दरबार के सामने मुँह खोले खड़ी हूँ। शेरशाह मुझे अच्छी तरह से पहचानते हैं, किन्तु फिर भी पहले कभी न देखने का सफेद झूठ बोल रहे हैं।"

"नहीं, बन्दानवाज़ ! यह झूठी है। इसीलिये इसके पास झूठी तौहमत को छोड़कर और कोई सबूत नहीं है।"

"सम्राट् ! स्त्री के निकट तो उसके कथन के अतिरिक्त धर्म-ईमान जाने का और कोई प्रमाण हुआ ही नहीं करता। किन्तु इतने पर भी उसे असत्य माना जाता है, तो यह भी सही। यदि शेरशाह सत्यवक्ता हैं तो इस बात का निर्णय इन्हीं के कथन पर छोड़ा जाये। ये कुरान मजीद को हाथ में लेकर तथा कलाम-पाक की शपथ खाकर सम्राट् के सामने बयान दें कि, इन्होंने आज से पूर्व मुझे कभी कहीं नहीं देखा, और न मेरा दीन-ईमान बिगाड़ा एवं न कभी आज तक मेरी धन-दौलत आदि किसी वस्तु को ही छूआ है। साथ ही यह मंजूर करे कि मैं इनके लिये इनकी बहन के समान अत्यन्त पवित्र स्त्री हूँ और इन्हें सम्राट् के समक्ष इस समय मुझ को धर्म-बहन बनाने और उस नाम से पुकारने में भी कोई संकोच नहीं है।"

"शेरशाह ! तुम अपनी सफाई पेश करो, वरना हमारी निगाह से मुल्जिम साबित होकर सज़ाये मौत के हक़दार ठहराये जाते हो।"

"आज मैं बाहोश कुरान-मजीद को हाथ में लेकर और कलामे पाक की हज़ार-हज़ार कस्म खाकर शाहन्शाह के रूबरू सच-सच बयान करता हूँ, खुदावन्द ! कि इस नटनी का यह दावा बिल्कुल झूठा है। मैंने आज से पहले इसे कभी नहीं देखा। दीन-ईमान लेने की बात तो दूर रही, मैंने कभी इसके बदन को हाथ तक नहीं लगाया। इसकी कोई चीज़ भी मैंने किसी तरह से कभी नहीं ली है। लिहाज़ा मुझको इसे हमशीरा कहकर पुकारने में भी कोई गुरेज़ नहीं है।"

"सम्राट् ! अब ये नवाब साहब शेरशाह मेरे धर्म-भाई बन रहे हैं। इन्होंने आज से पहले मुझे कभी कहीं नहीं देखा। इनकी तरफ से, इनके कहने के अनुसार मेरा दीन-ईमान भी सलामत है। इन्होंने मुझसे मेरी कोई चीज़ भी नहीं ली। इसके साथ ही इस वक्त ये होश-हवास से भी दुरुस्त हैं। अब मैं इनसे प्रश्न करती हूँ कि जब इन्होंने किसी नाते मुझसे कोई चीज़ ली ही नहीं, तो इनको मेरी अंगूठी और कटार निशानी के रूप में कहाँ से मिल गईं ? जब इन्होंने आज से पूर्व मुझको भर नज़र देखा तक ही नहीं है, सम्राट् ! तो ये मेरी जंघा का लहसन, तिल तथा घाव का निशान कहाँ से और किस तरह देख आये ? और जब मैं इनकी बहन के समान पवित्र हूँ एवं मेरे शरीर का कोई अंग इन्होंने कभी स्वप्न तक में नहीं छूआ, तो ये मेरा धर्म-ईमान कैसे बिगाड़ आये ? ये खूब देख लें सम्राट् ! मैं हाड़ा-नरेश बून्दीपति महाराव श्री छत्रसाल जी की पत्नी किरणमयी हूँ।"

किरणमयी का नाम सुनकर शाहजहां आत्म-विस्मृत होकर बोले—"शेरशाह !"

सारे दरबार में इस समय पूर्ण सन्नाटा छा गया। दरबार के सब उपस्थित जन भूमि की ओर देखकर कानों में बात-चीत करने और संकेत द्वारा अपने-अपने मनोभाव एक दूसरे पर प्रकट करने लगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामने एक विचित्र चमत्कार दिखाई पड़ने लगा। स्वर्ग की पूज्य प्रतिमा महारानी किरणमयी साक्षात् दुर्गाभवानी के सदृश आज निर्भीक होकर सिंहनी की भांति गर्जती हुई, मुगल-सम्राट् के दरबार में खड़ी है। उसका यह विजय-नाद वायु-मण्डल में गूँज रहा है कि 'मैं किरणमयी हूँ। जब ये मुझे पहचानते तक ही नहीं तो इन्होंने मेरे गुप्त चिह्न कहां से देखे ?' सारी सरदारी की दृष्टि कभी उस स्वनाम-धन्य वीराँगना पर जाती है, तो कभी निर्जीववत् बने नवाब शेरशाह पर। इधर नतमस्तक शेरशाह भूमि की ओर देखते हुये खड़े-खड़े थर-थर

काँप रहे हैं। उनके शरीर में सहस्र-सहस्र विषधर-दंश के समान कष्ट हो रहा है। उनका चेहरा लज्जा और ग्लानि से काला पड़ गया है। वे इबादत की सी दशा में महारानी किरणमयी के पैरों की तरफ झुक कर अस्फुट शब्दों में बड़बड़ा रहे हैं : "रानी, बहन, ! तुम वाक़ई महासती हो। मैं जहन्नुम का एक अदना कीड़ा हूँ। मैंने अपनी खुदगर्ज़ी में अन्धा होकर, सूरज की तरफ धूल फेंकने और उसे अटाने यानी कलंकित करने का हौसला किया था, पर उस काम में खुद-बखुद मुँह की खाई। मेरा ऊपर मुँह करके थूका हुआ खुद मेरे ही मुँह पर आकर गिर गया। यानी मैं खुद ही बेहद ज़लील और ख्वार हो चुका हूँ। अब मुझे यह ज़िन्दगी बोझ मालूम देने लगी है।"

"क्या हमारे ऊपर प्रहार करते समय आपको यह ख्याल नहीं आया कि सुख-दुःख और मानापमान का दूसरा भी तुम्हारी ही तरह शिकार बनता है और वह भी तुम्हारे जैसा मनुष्य है ?"

"शेरशाह ! अब मालूम हुआ कि, एक इज्जतदार पठान खानदान में पैदा होकर भी तुम कितने नीच और कमीने हो। खैर, अब तुम को सज़ाये मौत तो जरूर-बिल्ज़रूर मिलेगी ही, मगर मरने से पेशतर इस अमर का सच-सच बयान करो कि आखिर यह सब साज़िश है क्या ?"

"जहांपनाह ! मैंने एक झूठा जाल रचकर एक पाकीज़ा बहन को बदनाम करने की कोशिश की और चाहा उसके खाविंद महाराव छत्रसाल जी को उसी के नतीजे पर कत्ल कराना और उसका सुहाग मिटाना, मगर इसके धर्म ने इसके बेकसूर खाविंद और इज्ज़त दोनों को बचा लिया।"

इतना कहकर शेरशाह ने जिस प्रकार रानी को कलंकित करने का षड्यन्त्र रचा गया था, उसका समस्त विवरण ब्योरेवार शाहजहाँ के सम्मुख प्रकट कर दिया। उसे सुनकर बादशाह के क्रोध का ठिकाना न रहा और तत्काल शेरशाह के वध की आज्ञा देते हुए रानी की ओर

मुड़कर बोले, "बेटी किरणमयी ! हम तुम्हारी पाकीज़गी को पहले से भी ज्यादा इज्ज़त की नज़र से देखते हैं। तुम हमारी धर्म की बेटी हो। हम तुमसे इतने खुश हैं कि तुम्हारी हरएक ख्वाहिश को पूरा करने के लिये तैयार हैं। सिर्फ तुम्हारे कहने की देर है।"

"भारत-सम्राट् ! नहीं, नहीं, पूज्य पिताजी ! जहाँ पत्नी का पति की सेवा तथा तद्रक्षार्थ आत्म-समर्पण हमारे आदर्शानुसार अनिवार्य है, वहाँ अपने भाई का हितचिन्तन भी एक सच्ची और वास्तविक बहन का कर्तव्य हो जाता है। अब, जबकि अपने पाप के लिये प्रायश्चित् अर्थात् तोबा करके शेरशाह मुझे बहन मानकर धर्म-भाई बन गये; तो उनके प्राण-दण्ड का प्रयोजन ही कहाँ रहा ? अब तो इनको और भी कठोर दण्ड दिया जाना चाहिये। जो होगा इनकी धर्म-बहन की तरफ से क्षमा और प्राण-दान।"

"नहीं, नहीं, खुदावन्द ! मुझे जल्द से जल्द कत्ल कराइये। मैं अपनी निहायत पाकीज़ा और दरियादिल बहन की गंगा-जल के मानिन्द सच्ची अस्मत को ज़क पहुँचा कर इस काले मुँह को लिये हुए दुनिया में ज़िन्दा रहना पसन्द नहीं करता। बन्दानवाज़ ! अहले-आलम में रहकर बदनामी और ज़िल्लत की ज़िन्दगी बिताने से, अपने वास्ते जहन्नुम की आग में गिरना लाख दर्जे बेहतर समझता हूँ। ज़िन्दगी बख्शने की सज़ा, सज़ाये मौत की बनिस्बत मौजूदा हालत में मेरे लिये कहीं ज्यादा खतरनाक है, हुज़ूर !"

"बेटी किरण ! शाही कानून की रू से शेरशाह के क़त्ल का हुक्म शाया हो चुका है। अब वह बदला जाना नहीं चाहिये।"

"पुत्री की इच्छा-पूर्ति का पिता जी और रानी की माँग का सम्राट् वचन दे चुके हैं; श्रीमान् ! वह भी आपको मान्य होना चाहिये।"

"मेरी अजीमोश्शान बहन ! मुझे माफ करो ! मेरा गुनाह बहुत बड़ा

है। मैंने तुम पर नहीं पाक नारी जाति पर लांछन लगाया है। अभी से जहन्नुम के कुत्ते मुझे नोंच-नोंचकर खाने के लिये मुँह बाने लगे हैं। वह देखो…!

"भाई शेरशाह ! सती का दण्ड श्रेष्ठतम श्रेणी का दण्ड हुआ करता है। वैसा ही तुमको भी मिलेगा, कमो-बेश नहीं। जाओ तुमको मेरी ओर से क्षमा किया गया। अब मेरे प्राणनाथ श्री बूँदी-नरेश…सम्राट् !"

"शेरशाह ! बेटी किरण की हठ मानकर, उसकी मेहरबानी से तुमको नये सिरे से ज़िन्दगी बख़्शी गई। अपनी नीचता पर तोबा करो। राजपूतों के अमोघ धर्म के उसूलों को सिर नवाकर शुक्रिया अदा करो अपनी इस धर्म-बहन का, जिसने इस वक्त, इस हालत में भी तुम्हारी जान बचाई है। रहे महाराव छत्रसाल, उनका तो सल्तनत में अब कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। उनका नाम तुमने अमर कर दिया, बेटी !"

"मैंने उनका ! नहीं, नहीं, उन्होंने मेरा, सम्राट् ! यह सब मेरे पति परमेश्वर की ही चरण-रज का प्रताप है।"

"मैं हज़ार बार तोबा करता हूँ गरीब-परवर ! और राजपूतों के धर्म की फ़य्याजी के उसूल को तसलीम करते हुए सैंकड़ों जबानों से हज़ार बार अपनी पाकीज़ा बहन किरणमयी का शुक्रिया अदा करता हूँ और उसके सदा सुहागन रहने के लिये लाखों बार दुआ देता हूँ। खुदा इस जोड़ी को कयामत तक कायम रक्खे और बाद मुर्दन जन्नत बख़्शे।"

"बेटी, हम अपनी ज़िन्दगी और शाहंशाही को बहुत खुश-किस्मत समझते हैं, जिसके दौरान में खुदा ने हम को उस गुल्शने-जहाँ का माली बनाया, जिसमें तुम लोगों के मानिन्द जन्नत के पाक फूल खिलते हैं। धन्य है महाराव छत्रसाल की और तुम्हारी आला और अफज़ल शख्सि-यत को; और धन्य है, उन वसीअ धर्म-उसूलों को व नेकनाम माता-पिता को, जिन्होंने तुम्हें जन्म देकर इन्सानियत के सही साँचे में ढाला है।"

"सम्राट् के मुख से प्रजाजन की और पिता के मुख से अपनी संतान की, सीमा से अधिक प्रशंसा अशोभनीय है, सम्राट् ! हमने केवल अपने-अपने धर्मादर्शों का अनुकरण करते हुए केवलमात्र स्वकर्तव्य का ही पालन किया है और कुछ नहीं।"

"फराइज़ का अन्जाम देना ही तो दुनिया में इन्सानी ज़िन्दगी है, वरना जीता हुआ भी आदमी मुर्दे के बराबर है। इस मतलब की दुनिया में फराइज़ की अहमियत को महसूस करने वाले भी तो बहुत थोड़े ही इन्सान होते हैं। इसी खयाल से तो हम कहते हैं, कि तुम दोनों ख़ाविंद-बीवी हमारी हुकूमत के नायाब नमूने हो और अपने कान के हीरों की कदर न करना किसी जौहरी का जड़पन नहीं, तो और क्या है ?"

"खैर, सम्राट् ! अब श्रीमान् की यह पुत्री अपने पतिदेव के दर्शन करना चाहती है।"

"तहव्वर खाँ ! महाराव छत्रसाल जी को हमारी याददाश्त कराओ।"

इस आज्ञा को पाकर मंत्री तहव्वर खाँ ने शीघ्र बूंदी-नरेश महाराव छत्रसाल को सम्राट् के आह्वान का सन्देश भेजा। तत्काल उनके श्रीहुज़ूर में उपस्थित होने की व्यवस्था हो गई। इसी समय सम्राट् की आज्ञा से महारानी किरणमयी को दरबार में बैठने के लिये वही स्थान दिया गया, जिस पर शाहजादी जहानआरा विराजती है। सम्राट् के द्वारा बड़े आग्रह के साथ परम सम्मान को प्राप्त होकर, महारानी किरणमयी उस भव्य आसन पर आसीन हुई। सब उपस्थित दरबारी उसके धर्म की प्रशंसा करने लगे। शाहजहाँ द्वारा अवसरानुकूल प्रसंग छेड़े जाने पर इसी बीच में दोनों में प्रश्नोत्तर सम्बन्धी निम्न वार्तालाप हुआ—

"औरत की शख्सीयत को ऊँचा उठाने वाली कौन-सी शै है, बेटी ? और क्या है उसकी ज़िन्दगी का खास मुद्दाआ ?"

"सम्राट् ! स्त्री का जीवन-ध्येय केवल-मात्र सत्य और पवित्र प्रेम

तथा उसके प्रदर्शन से दैव को प्रसन्न करना है। इसी व्यापार से संसार के अन्दर उसके अपने तथा उसके स्वजनों के जीवन में सांसारिक बन्धन के प्रति रोचकता उत्पन्न होती है। वह पवित्र एवं अगाध प्रेम, स्त्री के हृदय में अपने पति के प्रति त्याग, तपस्या, सेवा और सत्य से परिपूर्ण होना चाहिये और अन्य जन के लिये होना चाहिये, मृदु वचन, दया और उदारता से युक्त।"

"औरत और मर्द की मुहब्बत में क्या फर्क है, पुत्री ?"

"स्त्री का प्रेम ठोस, स्थायी और एकक्षेत्री होता है, सम्राट्! किन्तु साधारणतया पुरुष का प्रेम होता है पोला, अस्थायी और बहुक्षेत्री। स्त्री अपने प्रेम में स्वाकांक्षाओं को अहंवृत की शून्यता पर ले आती है, किन्तु पुरुष अपने प्रेम में पहुँचा देता है उन्हें उसकी परिपूर्णता अर्थात् उच्च शिखर-बिन्दु पर। किन्तु ऐसा स्त्री और पुरुष के स्वाभाविक अवस्था में रहने पर्यन्त ही सम्भव है, स्वपन खोने के पश्चात् नहीं।"

"इस तरह की तनज्जुली के रोकने का क्या उपाय है, बेटी ?"

"इसके लिये अपने उच्च आदर्श और सद्धर्म सिद्धान्तों का शिक्षण तथा अध्ययन आदि ही ऐसे नियंत्रण हैं, जो दोनों के व्यक्तित्व को पतन-पथ से रोककर नष्ट होने से बचा सकते हैं। अन्यथा वह इसी प्रकार विनाश को प्राप्त होता है जैसे चक्की में गिरा हुआ वह दाना पिसने से बचा रहता है, जो तद्स्थित कीली के निकट रहता है, नहीं तो उससे दूर होकर उसका सर्वथा चूर्ण ही हो जाता है। धर्म-सिद्धान्तों के उच्च स्तर के आधार पर ही अर्थात् उसी के क्रमानुसार किसी के व्यक्तित्व का उत्थान हुआ करता है, अधिक नहीं।"

"सभी औरतें अपने अच्छे व नेक-चलन होने का दावा करती हैं। हालांकि उनमें से बहुत-सी निहायत बदचलन साबित होती हैं। क्या, बता सकती हो बेटी! कि शरीफ और बदमाश औरत की आम-फहम पहचान क्या है ?"

"जो पत्नी संसार में प्रत्येक वस्तु से, यहाँ तक कि अपने आपे तक से भी अधिक श्रेष्ठ अपने पति को समझे, तथा सर्वदा उसकी आज्ञानुसार चलकर, उसके हित और प्रतिष्ठा में, अपना सर्वस्व निछावर करने पर तत्पर होती है, वही स्त्री अच्छी होती है। वह अपने पति में अपनी समस्त क्रियाओं का इसी प्रकार केन्द्रीकरण कर देती है, जैसे अर्जुन ने लक्ष्य-वेध के समय अपनी दृष्टि का केन्द्रीकरण मीन की आँख के तिल में कर दिया था। उसी दशा में वह हमारे हिन्दू-आदर्श के अनुसार सफल जीवन होता है। मोटे तौर से इसका तात्पर्य यह है कि पति की अहित-कारक निन्दा एवं अपयश की बातचीत सुनना या तत्सम्बन्धी दृश्य देखना जिसे असह्य हो और जो अपने तप, जप, यज्ञ, दान आदि सबका अन्त पतित्व में मानती हो तथा पति के अतिरिक्त जिसे संसार में और कुछ सूझता ही न हो, वही स्त्री सती, भली या शरीफ कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त जो स्त्री पति की अपेक्षा, पुत्र पर्यन्त किसी भी अन्य जन को अधिकतर प्यार करती हो; बहुत-सी बातों में अपने पति से छिपाव-लुकाव या बचाव रखती हो, उस स्त्री को पतिता समझना चाहिये; अर्थात् जो स्त्री अपने पति के गृहागमन तथा उपस्थिति पर आलस्य, अप्रसन्नता, किन्तु उसके विदेश-गमन, रोग-पीड़न अथवा निधन पर प्रसन्नता अनुभव करती हो; जो स्त्री पुत्र पर्यन्त परिजन की चाव से सेवार्थ तत्पर रहती हो, किन्तु पति की सेवा में अरुचि और हतोत्साह का भाव रखती हो तथा उसे एक भार मानती हो, जो पतिके दुख, हानि और निंदादि को अभिरुचि, प्रसन्नता एवं समर्थन की दृष्टि से देखती हो और जो किसी भी परिजन की हानि या निन्दादि से उसके विपरीत दुखी हो; अथवा जो पर-पुरुषों के साथ मृदुता, मधुरता, सौहार्द्र एवं सुरुचिपूर्वक वार्तालाप करती हो, किन्तु अपने पति के प्रति कर्कश हो, अनर्गल बकवास करती हो; अपरञ्च जो परपुरुषों के नैकट्य में अभिरुचि और परगृहगमन में प्रसन्नता तथा तत्परता प्रकट करती हो और पति के नैकट्य तथा स्वगृह

प्रतिष्ठान से घृणा कर गृहस्थ कार्यों में अन्यमनस्कता प्रदर्शित करती हो, उस स्त्री को दुराचारिणी एवं नारी-जाति का कलंक समझना चाहिये—ऐसा हमारे धर्मशास्त्र का उल्लेख है। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के अनुसार, प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रूप से ही स्त्री के हृदय में सदा आठ अवगुण निवास किया करते हैं। उत्तम स्त्रियाँ ज्ञान, स्वाभिमान, अपवाद, लज्जा तथा भय का अवलम्ब लेकर उन अवगुणों से अपने को संयमित रखती हैं। वे आठ अवगुण इस प्रकार हैं:—

साहस, अनृत, चपलता, माया; भय, अविवेक, अशौच, अदाया।
नारि स्वभाव सुबुधजन कहहीं; अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥

"इन्सान में वह ताकत किस तरह पैदा होती है जिससे वह ऐसे ऊँचे काम कर देता है कि जिनका हर खासो-श्राम को क़यास तक भी न हो ?"

"सम्राट् ! हमारे क्षात्रादर्श के अनुसार मनुष्य-जीवन का अन्तिम ध्येय त्याग, तपस्या, संयम, सत्य, धर्म, स्वध्येयार्थ बलिदान और न्याय है। इनसे जो जीव प्रेम रखते हैं और इनके विरुद्ध बातों से घृणा करते हैं वे एक विलक्षण शक्ति को प्राप्त कर लिया करते हैं। उक्त शक्ति के प्राप्त हो जाने पर, संसार के सुख-दुख, जीवन-मरण, यश-अपयश, हानि-लाभ उनके लिये ऐसे सामान्य विषय बन जाते हैं कि वे उन शक्तिशाली मनुष्यों को उनकी उच्चता के कारण प्रभावित ही नहीं कर सकते। उनका अपना चरित्र, अपना सिद्धांत, अपना दृष्टिकोण और अपना आदर्श होता है। संसार के जीवों में वे अग्रणी गिने जाते हैं और समाज में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं। वे ही समाज की मर्यादा के आधार-स्तम्भ बनते हैं तथा सामान्य स्तर के स्त्री-पुरुषों के लिये आश्चर्य प्रतीत हुआ करते हैं। जो बकरी रूपी जीव अपने उच्च आदर्शरूपी बाड़े में सुरक्षित है उसे हीनत्व के भेड़िये हानि नहीं पहुँचा सकते। यह भावना सदा ही वीर हृदय स्त्री-पुरुषों में जागरूक रही है और इसी ने उन्हें जग-पूज्य बनाया है। यदि वह हरिश्चन्द्र के दान का स्रोत है तो शिवि और दधीचि के

परोपकार का हेतु भी वही है। भीष्म, अर्जुन और लक्ष्मण के संयम एवं राम, भरत तथा देव्रत के राज्य-वसुधा-त्याग का मूल उसमें है तो सीता, सावित्री और पद्मिनी के पतिव्रत का आधार भी वही है। इसकी प्रेरणा हमको हमारे तत्वज्ञान पुनर्जीवनवाद से मिलती है, जिसके कारण मृत्यु हमारी दृष्टि में ऐसी महत्त्वहीन वस्तु बन जाती है कि हम उसकी तरफ से किञ्चित मात्र भी भय अनुभव न कर, निश्चिन्त होकर कर्मकाण्ड में लगे रहते हैं।

इसी धर्मादर्श की छत्रछाया में प्रस्तुत भावना के अन्तर्गत उसके जन्म-जात उत्साह और आनन्द से उन्मत्त हो, किसी ने अतिथि-सत्कार के लिये अस्थियाँ प्रदान कीं, तो किसी ने अपने प्राणप्रिय पुत्र पर्यन्त को चीर डाला। किसी ने राज्य-लोभ को त्याग कर संन्यास धारण किया, तो किसी ने स्वर्ग-सुख पर्यन्त को ठोकर मार दी। किसी ने ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया, तो किसी ने अपने पति अथवा स्वामी के लिये अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करा डाले। इसी धर्मबल ने स्त्री-पुरुषों को वह महान् शक्ति प्रदान की, कि वे संसार की प्रत्येक सबल से सबल शक्ति, यहाँ तक कि मृत्यु पर्यन्त के साथ, संघर्ष करने के लिये सहर्ष तत्पर हो गये। इसी धर्मबल ने कोमलांगी अबलाओं तक को सबला बनाकर जौहराग्नि की लपटों तक के साथ खेलने का साहस प्रदान किया।

इस क्षात्रादर्श की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाय। जहाँ वह एक तरफ मानव व्यक्तित्व को उन्नति तथा अभ्युत्थान की ओर ले जाता है, वहाँ यह मनुष्य को पतन के गर्त में गिरने से भी रोकता है। इसी बल को प्राप्त करने पर मनुष्य, मृत्यु-भय की संकीर्णहृदयता को छोड़ देश, जाति, धर्म और स्वामी के लिये मर-मिटने की क्षमता देने वाले उच्च भावों को उपलब्ध कर अमर बन इतिहास में स्थान पाता है। प्रस्तुत धर्मादर्श ही उस महान् शक्ति का स्रोत है और अत्यन्त स्तुत्य है।"

"बेटी! तुम्हारी काबलियत पर बलिहार! तुमको शाबाश है।"

उपर्युक्त वार्ता के समाप्त होने के साथ ही बूंदी-नरेश छत्रसाल ने शाहजहाँ के दरबार में पदार्पण किया। उन्हें सम्राट् के समक्ष आने से पूर्व ही अपनी पत्नी के साहस, कर्तव्यतत्परता, पति-प्रेम और पावित्र्य आदि विषयों का, जिनको लेकर उनकी सहधर्मिणी अपनी कठिनतम 'प्रबल-परीक्षा' में बड़े गौरव के साथ उत्तीर्ण हुई है, परिचय-सम्बन्धी समाचार मिल गये हैं। ऐसी वीरांगना एवं पतिपरायणा पत्नी को पाकर वे अपने जीवन को परम धन्य मान रहे हैं।

जिस समय बूंदी-नरेश महाराव छत्रसाल जी शाही दरबार में महारानी किरण के सम्मुख गये, उसी समय रानी अपने पूज्य पति को निकट देखकर अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और अपने प्राणनाथ के पैर पकड़ कर उनसे क्षमा-याचना करने लगी। महाराव ने प्रेम से गद्‌गद् होकर, उसे अपने हाथों से उठा कर, अपनी हार्दिक प्रसन्नता और स्नेह का परिचय दिया। अब दोनों के हृदय स्नेह-रस में गोते खाने लगे।

इस प्रकार इस आदर्श दम्पतिवर्ग का वियोग के पश्चात् पुनर्मिलन हुआ। दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी 'प्रबल-परीक्षा' में पूर्ण रूप से उत्तीर्ण हो चुके हैं। इन दोनों ने, उच्चतम क्षात्र-आदर्श का अनुसरण करके जीवन में जीवट-युक्त खेल खेले हैं। इसलिये इनके जीवन स्वयमेव ही आदर्श बन गये हैं। जीवन का ध्येय उच्च आदर्श को मानकर जो कर्त्तव्यशील बनते हैं वे ही उन्नति को प्राप्त होते हैं, चाहे वे व्यक्ति हों या राष्ट्र; अन्यथा अवनति के गर्त में गिरकर संसार से प्रस्थान कर जाते हैं।

दरबार के सभी सभासदों ने किरणमयी और छत्रसाल के दाम्पत्य-प्रेम को अटूट तथा चिरस्थायी रखने और उनके दीर्घायु होने की कामना की। शाहजहाँ ने किरण को पुत्री बनाने के उपलक्ष में एक बड़ी जागीर व्यक्तिगत रूप से उसे प्रदान की। इसके पश्चात महाराव ने महारानी सहित बूंदी को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँच कर शेष जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत किया।